शमशेर की कविता का सौन्दर्य-शास्त्र

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की पीएच.डी., (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध)

2011

प्रस्तुतकर्ता

इक्ष्वाकु कुमार

निर्देशक

प्रो. शशि मुदिराज

हिन्दी विभाग,

मानविकी संकाय,

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद - **500 046**

विभागाध्यक्ष

प्रो. रवि रंजन

हिन्दी विभाग,

मानविकी संकाय,

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद - **500 046**

"Shamsher ki Kavita ka Saundarya-shastra"

A Thesis submitted during 2011 to the University of Hyderabad in partial fulfillment of the award of a Ph.D. degree in Department of Hindi School of Humanities.

By

IKSHWAKU KUMAR
05HHPH06

Department of Hindi
School of Humanities

University of Hyderabad
(P.O.) Central University, Gachibowli
Hyderabad-500 046
Andhra Pradesh
INDIA.

C E R T I F I C A T E

This is to certify that the thesis entitled ***"SHAMSHER KI KAVITA KA SAUNDARYA-SHASTRA"*** submitted by **IKSHWAKU KUMAR** bearing Reg. No.**05HHPH06** in partial fulfillment of the requirements for the award of Doctor of Philosophy in **Hindi** is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

The thesis has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of the Supervisor

// Countersigned //

Head of the Department

Dean of the School

DECLARATION

I**, IKSHWAKU KUMAR** hereby declare that this thesis entitled ***"SHAMSHER KI KAVITA KA SAUNDARYA-SHASTRA"*** submitted by me under the guidance and supervision of **Prof. Shashi Mudiraj** is a bonafide research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Date : Name : **IKSHWAKU KUMAR**

(Signature of the Student)

Regd.No. **05HHPH06**

भूमिका

हिन्दी काव्यधारा में शमशेर बहादुर सिंह अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए हैं। इस पहचान को उघारा था स्व. श्री विजयदेव नारायण साही जी ने अपने प्रसिद्ध निबंध 'शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट' में। शमशेर के काव्य-सौन्दर्य में मेरी रूचि का सिलसिला यहीं से शुरू हुआ। मैंने अपना शोध-सफर सुंदर की खोज से आरम्भ किया और अटक गया कला पर, फिर उससे आगे बढा तो लंबे समय के पश्चात जा पहुँचा वस्तु तत्व पर। इसके उपरान्त शमशेर की कविताओं पर केंद्रित रहकर पाठ और पुनर्पाठ करता रहा। जब सम्बंधित सामग्री एकत्र हुई तो देखा कि शमशेर की कविताओं पर मेरी जानकारी के अनुसार मात्र तीन-चार पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। यद्यपि शोध से सम्बंधित लेखों की संख्या बहुत अधिक नहीं रही है, किन्तु शमशेर की जन्मशताब्दी वर्ष (13 जनवरी सन् 1911) तक आते-आते लेखों की संख्या बढ़ गई है। इसलिए अपनी जानकारी भर सभी लेखों को समेटने के क्रम में पुनः अध्ययन हुआ। इस प्रकार 'शमशेर की कविता का सौन्दर्यशास्त्र' मेरी शोध-यात्रा का अगला चरण बना।

शमशेर की कविता पर कई कोणों से विचार हुए हैं और हो भी सकते हैं। क्योंकि उनका रचना-संसार बहुकेंद्रित है। साही जी तो शमशेर को 'विशुद्ध सौन्दर्य' का कवि मानते रहे हैं और डॉ. रामविलास शर्मा जी 'रहस्यवाद' का कवि। अज्ञेय जी के लिए शमशेर 'रूमानी तथा बिम्बवादी' हैं तो स्व. मलयज के लिए 'मूड्स' के कवि। इसी प्रकार अशोक वाजपेयी जी शमशेर के 'शब्दों के बीच नीरवता' की तलाश करते हैं तथा कवि के लिए 'तीसरे संसार की ज़रूरत' बताते हैं। गिरिधर राठी जी का तो ख्याल है कि शमशेर 'पहुँचा हुआ मगर ठहरा हुआ कवि' है। कवि कुँवर नारायण जी शमशेर को बहुत 'इतने पास अपने' समझते रहे हैं। इन बातों से हुआ ये कि शमशेर को कभी छायावाद का, कभी उत्तर छायावाद का, कभी प्रयोगवाद का तो कभी प्रगतिवाद का तथा कभी जनवाद का तो कभी नयी कविता आदि का कवि माना जाता रहा। इसलिए स्वभावतः विशेषण भी तैयार हुए। दूसरों से थोड़ा भिन्न प्रो. रंजना अरगड़े जी ने शमशेर के लिए 'कवियों का कवि' विशेषण चुना है। उपर्युक्त सभी मंतव्य बहुत दूर तक ठीक भी माने जा सकते हैं- आक्षेप भी और

विविध प्रकार के विशेषण भी। किन्तु मेरी समझ के अनुसार क्या शमशेर की कविताओं का समग्रता में अध्ययन नहीं किया जा सकता? मेरा 'प्रयास' इसी दिशा में उठाया गया छोटा-सा कदम है।

माना जा सकता है कि 'मुज़फ्फर नगरी' शमशेर की ज़मीन-घर-परिवार-देश आदि उनकी कविता है। इसलिए यथाप्रयास मैंने शमशेर के जीवन से सम्बंधित सामग्री संकलन तो किया परन्तु शोध-प्रबंध में उस सामग्री का उपयोग न कर सका। यद्यपि शमशेर के काव्य की परिक्रमा अवश्य लगाता रहा हूँ। शमशेर के मूलतः छः काव्य-संग्रह माने जाते हैं; और यदि 'दूसरा सप्तक' को शामिल कर लिया जाए तो सात बन जाते हैं। शमशेर की कविता के इन सात सुरों की परिक्रमा का आईना प्रस्तुत शोध-प्रबंध है। मेरे भले-बुरे प्रयास का अन्तिम निर्णय तो विद्वतजन ही करेंगे। इसलिए मैं शोध-प्रबंध के अध्यायों की सामान्य व संक्षिप्त चर्चा करके तथा आभार ज्ञापित करके विदा लूँगा।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध **पाँच** अध्यायों में विभक्त है। **प्रथम अध्याय** कवि शमशेर के उन पक्षों को उजागर करता है जिनसे भारत की 'लोकतंत्र भारती' सदैव शिखर पर रही है। **द्वितीय अध्याय** सौन्दर्य के भारतीय परिप्रेक्ष्य को संक्षिप्त में प्रस्तुत करता है तथा उसकी गतिशीलता को समझने का प्रयास करता है। **तृतीय अध्याय** शमशेर के सौन्दर्य सम्बन्धी मत से जुड़ा हुआ है और संक्षेप में ही शमशेर की सृजन-प्रक्रिया को समझने का प्रयास करता है। **चतुर्थ अध्याय** शमशेर की कविता के वस्तु-विन्यास की विलक्षणता को प्रस्तुत करता है। उनकी कविताओं का विकासक्रम की दृष्टि से अध्ययन हुआ है। प्रयत्न यह रहा है कि कोई भी काव्य प्रवृत्ति छूटने न पाये। **पंचम अध्याय** में शमशेर की कविता के रूप-विन्यास को सुविधा की दृष्टि से तीन खण्डों में विभाजित किया गया है। *बिम्ब*- शमशेर के रसचित्रों में वैविध्यपूर्ण बिम्ब-सृष्टि का अध्ययन किया गया है। *रंग*- शमशेर के रसमय रंगों की विविधता को अध्ययन का आधार बनाया गया है। *लय*- इसके अंतर्गत शमशेर की कविताओं में व्यक्त लय की विविधता का अध्ययन किया गया है। रूप-विन्यास के अंतर्गत ही शमशेर के अन्य कला-रूपों के प्रयोगों की संक्षिप्त चर्चा है। **उपसंहार** मोटे तौर से 'शमशेर की कविता के सौंदर्यशास्त्र' के अध्ययन से निकली विशेषताओं को प्रस्तुत किया गया है। 'वादे-वादे जायते तत्त्वबोध :' मेरे अध्ययन का संबल रहा है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध प्रो. शशि मुदिराज जी के निर्देशन में संपन्न हुआ है। जिनके सहयोग के बिना यह शोधकार्य पूरा न हो पाता। प्रो. सुवास कुमार जी का सहयोग अपेक्षा से अधिक रहा है। इन दोनों विद्वतजनों के अतिरिक्त शिवकुमार मिश्र जी, विजेन्द्र जी, विष्णुचन्द्र शर्मा जी से भी कभी-न-कभी शोध से जुड़े पहलुओं पर बातचीत हुई है। अतः इन सब लोगों के साथ पूर्वजों को नमन। कैसे भूल सकता हूँ माँ-पिता व परिवारजनों को जिन्होंने कठिनाई में रहकर भी मुझे पढ़ाना उचित जाना। क्या इन सब लोगों से उऋण हुआ जा सकता है! प्रयत्न करते रहने में ही भलाई है। हैदराबाद विश्वविद्यालय के ग्रंथालय का,अन्य अध्यापकों का तथा सहयोगी मित्रों का आभार। अस्तु।

अनुक्रमणिका

भूमिका i - iii

1. **प्रथम अध्याय-** 1 - 17
   "लोकतंत्र भारती का 'कवि'- शमशेर
2. **द्वितीय अध्याय-** 18 - 27
   सौन्दर्य का शास्त्र !
3. **तृतीय अध्याय-** 28 - 37
   शमशेर का सौन्दर्य सम्बन्धी मत व सृजन-प्रक्रिया
4. **चतुर्थ अध्याय-** 38- 110
   शमशेर की कविता का वस्तु-विन्यास
5. **पंचम अध्याय-** 111-157
   शमशेर की कविता का रूप-विन्यास
   - 5.1. बिम्ब
   - 5.2. रंग
   - 5.3. लय

उपसंहार 158-161

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची 162-166

अध्याय एक

'लोकतंत्र भारती का 'कवि'' : शमशेर

1. 'लोकतंत्र भारती का 'कवि''-शमशेर

"अब ज़रा भारतीय साहित्य की अर्वाचीन परंपरा को देखिए। उसमें दो-एक बातें प्रमुख रूप से सामने आती हैं। एक तो निरंतर अपनी संस्कृति पर, अपने साहित्य पर, गर्व और अभिमान। उचित ही।(और आज तो यह और भी समीचीन है कि हम अपनी संस्कृति की ओजस्वी शक्तियों को पहचानें, और परखें।) साथ ही एक ख़ास बात जो हम देखते हैं, वह यह है कि, मित्र हो चाहे शत्रु, अपने पड़ोसियों की सांस्कृतिक परम्पराओं की छान-बीन में हमारी अपनी कतई कोई दिलचस्पी नहीं रही है। हमारी सारी ऐसी 'दिलचस्पियाँ' अधिकाँश उधार खाते ही हैं: प्रमुखतः अंग्रेजों की ही आँखों से हमने विदेशों को 'देखा' या 'समझा' है। अतः हमारा देखना समझना विदेशियों के ही अनुकूल पड़ा है।...आखिर इसके क्या मानी होते हैं- कि हमें कई साल महज यह समझने में लग जाएँ कि हमारे पड़ोसी का क्या इरादा है! -जबकि वह दोस्तनुमा दुश्मन हमारी एक-एक बात को परखता और अध्ययन करता चलता है, हमारे चरित्र को सीधे हमारी मूल भाषाओं के माध्यम से आँकता है, अपने कूटनीतिक विश्लेषण को त्रुटिहीन बनाने के लिए। और मालूम होता है ऐसे अध्ययन की सुविधायें वहाँ तेज़ी से व्यापक की जा रही हैं।"[1]- यह चिंता है भारतीय मनीषा की। जो अपनी समृद्ध परम्परा से निरंतर संवाद बनाये रखता है और अपनी मिट्टी, वहाँ के लोगों, वहाँ की संस्कृति, साहित्य-कला-इतिहास आदि पर उसी प्रकार गर्व करता है जैसे उसके पुरखों ने किया था। वह भाषा की ताक़त को जानता था। संभवतः इसीलिए भाषा उसके लिए महज़ एक माध्यम भर नहीं थी, बल्कि अस्त्र-शस्त्र भी थी। वह इसी अस्त्र-शस्त्र से प्रहार करता था-अपने देश को बुरी नज़रों से बचाता था, अपनी सीमा भर। शब्द-चित्र उसके संकल्प थे, साधन के मार्ग थे। तभी तो वह कवि होने की घोषणा करता है और अपने दुःख दर्द को समेटकर कहता है-

"ओ मेरे घर
ओ हे मेरी पृथ्वी
साँस के एवज़ तूने क्या दिया मुझे

---

[1] कुछ और गद्य-रचनाएँ, 157-58

-ओ मेरी माँ?"[1]

अपनी माँ-पृथ्वी-देश-घर से सवाल करने के बाद जो उत्तर पाता है, वह कोई बना-बनाया उत्तर नहीं है, बल्कि खतरनाक ढंग से जो साहस करता है, वह देखने लायक है-

"*इंसान के अँखौटे में डालकर मुझे*
सब कुछ तो दिया :
जब मुझे मेरे कवि का बीज दिया कटु-तिक्त ।
फिर एक ही जन्म में और क्या-क्या
चाहिए ।"[2]

भारतीय संस्कार से जो वाक़िफ नहीं है उन्हें स्पष्ट करना होगा कि यह कवि की कोई पूजा नहीं है बल्कि यह चिंता है भारतीय कवि की। जो पृथ्वी को या माँ को कुटुम्ब बनाये रखने की उदात्त धारणा को व्यक्त करता है। जो लोग आज भी स्त्री को देह मात्र बना देने पर तुले हुए हैं उन्हें शमशेर की कविताओं का मर्म शायद ही समझ में आये। शमशेर के इस घर को, पृथ्वी को, माँ को, देश को याद किया है, डॉ. नामवर सिंह ने –"अहमदाबाद से उस शाम लौटते हुए मुझे शमशेर की 'ओ मेरे घर' शीर्षक कविता शिद्दत से याद आती रही। 'ओ मेरी पृथ्वी!' अंदर से हिला देने वाली कविता है वह।...मेरे पीछे कवि की बुदबुद-सी आँखें थीं और आगे दूर जाते तारे।....जो कवि किसी के प्रति व्यवहार में कभी कटु नहीं हुआ, उसका बीज इतना कटु-तिक्त था।सहसा विश्वास नहीं होता। पूरी कविता में क्रूर, कटु और तिक्त शब्द इतनी बार आये हैं कि शमशेर को मीठा-मीठा समझ कर गपकने वालों को मितली आ सकती है। न भूलें, यह कविता उस कवि ने लिखी है, जिसका अपना कोई घर न था, सिवा कविता के। सच पूछिए तो कविता ही शमशेर का घर थी और यह घर स्वयं उन्होंने बनाया था अपने लिए। बड़े जतन से। 'बे-दरो-दीवार का एक घर। ग़ालिब की तरह।"[3]-दरअसल जिन्हें जीवन की प्रमुख समस्याएँ माना जाता है, वे सब समसामयिक ही नहीं होतीं, कुछ ऐसी समस्याएं भी होती हैं जो दीर्घ स्थायी हैं। एक कवि या भारतीय कवि की दृष्टि इन्हीं दोनों तरह की समस्याओं को लेकर आगे बढ़ती है। इसलिए शमशेर उन खतरों को मोल

---

1 इतने पास अपने, ओ मेरे घर, पृ. 19

2 इतने पास अपने, ओ मेरे घर, 20

3 काल से होड़ लेता शमशेर, (जनसत्ता 23.5.93), पृ. 20-21

लेकर आगे बढ़ते हैं जो उन्हें केवल सामयिक नहीं बनाती। सामयिकता का दबाब कवि को अपने समय से मुँह चुराने वाला कहे, तो कहे या रीतिकालीन कवि घोषित करे तो करे। शमशेर को इसकी परवाह भी नहीं। खतरे का सामना करता हुआ कवि अपने कर्म(कवि कर्म) से अपनी रचनाशीलता को पूरी ज़िम्मेदारी से रखता है। और इस दृष्टि से उसमें गजब का साहस है।

शमशेर को जिस खतरे का अंदेशा था, वह सही साबित हुआ। उनकी कविताओं के भिन्न अर्थ निकाले गए और व्याख्याएं भी भिन्न हुईं। राजेश जोशी ने कवि के हवाले से लिखा है- 'अगरचे मुझे डर है कि बुर्जुआ तबके का एक ख़ास गिरोह कुदरती तौर पर इसकी तरफ झुकेगा अगर जमाना न बदला तो।"[1] कवि का अंदेशा निराधार भी नहीं था। श्री विजयदेव नारायण साही, श्रीकांत वर्मा, श्री अज्ञेय, श्री कुंवर नारायण आदि ने उनकी प्रगतिशील चेतना में अंतर्विरोध देखा और दिखाया। किन्तु शमशेर जैसा कवि-व्यक्तित्व अपनी सम्पूर्णता में आज भी पाठकों-दर्शकों-श्रोताओं के दिलों में अपनी रोशनियाँ बिखेर रहा है-

"जो मैं हूँ-
मैं कि जिसमें सब कुछ है...
क्रांतियाँ, कम्यून,
कम्युनिस्ट समाज के
नाना कला विज्ञान और दर्शन के
जीवंत वैभव से समन्वित
व्यक्ति मैं ।
मैं, जो वह हरेक हूँ
जो तुझसे ओ काल, परे है ।"[2]

स्पष्ट है कि शमशेर पहले कवि-कलाकार हैं, बाद में उन्हें कुछ भी कहा जा सकता है। और कहा भी गया है। किन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि उनके अंदर की संभावनाओं को मुकम्मल तरीके से समझा जाये तथा उनसे खुलकर संवाद किया जाये। तो कोशिश करने में क्या बुराई है, शमशेर नाराज़ तो होंगे नहीं? वैसे शमशेर का स्वभाव भी ऐसा नहीं है।

---

1 नया-पथ, (जनवरी-मार्च 2010), 'जी को लगता है बात खरी है शायद' राजेश जोशी

2 प्रतिनिधि कविताएँ, काल तुझसे होड़ मेरी, पृ. 40

शमशेर का कवि-कलाकार अपनी प्रयोगशाला में निरंतर व्यस्त रहने वाला एक शिल्पी कवि है। अर्थात सभ्यता की समीक्षा वह बड़े पैमाने पर करता है। और उस पैमाने में 'आधुनिक मर्म की सूचनाएं' खोजता है । पतनोन्मुख आधुनिक सभ्यता के बाज़ार की चिल्ल-पों से त्रस्त कवि विजय सोनी से कविता में संवाद करता है-

"तुम डेनमार्क जाओ
स्वीडन पोलैंड में
कोई नया रूप
जन्म ले रहा है
अनपहचाने शायद
उसकी परछाई मैं यहाँ
पकड़ रहा हूँ
'शिल्प चक्र' में ।"[1]

शमशेर का यह शिल्पी कवि अपने आत्मज्ञान से विकसित होती कविता या कला के रहस्य को खोजने की कोशिश करता है। शमशेर का शिल्पी, सौन्दर्य और संगीत की स्वच्छ और निर्मल ऊंचाइयों से कभी निराश नहीं होता। कवि के लिए नया रूप लेती मानवीय कला या कविता, ऊंची कला का प्रतिबिम्ब है। कवि जानता है कि कब पूंजीवादी व्यवस्था उसकी कला या कविता को संरक्षण देती है। किन्तु कवि-कलाकार का आलोचक मन अपनी कला के बाज़ारीकरण के खिलाफ़ है या कला के बाज़ारीकरण के विरोध में है। पूंजीवादी बाज़ार कला क्या हर चीज़ को इश्तहार बना देने पर तुला है। कवि अपना विरोध दर्ज करते हुए लिखता है-

"बड़ी से बड़ी कृति यहाँ या तो
कोई बड़ा ही कीमती इश्तहार है
आदमी कोई आधुनिक बाज़ार है
जितना ही बड़ा आर्टिस्ट जो है
उतना ही बड़ा पत्रकार है ।"[2]

---

1 इतने पास अपने, विजय सोनी के चित्र, पृ. 35

2 इतने पास अपने, गोया वो, पृ. 28

कवि को यह कतई मंजूर नहीं कि कला या इंसान को बाज़ार की वस्तु बना दिया जाये। तो क्या शमशेर यह चाहते हैं कि कला या व्यक्ति पर किसी का नियंत्रण न हो? अर्थात कवि-कला के साथ-साथ व्यक्ति की स्वतंत्रता अनिवार्य रूप से निरपेक्ष होनी चाहिए? पहले कवि की छटपटाहट को देखिए-

"कवि एक बड़ा-सा तोता है
जिसे उसके संरक्षक पालते हैं
कई होते हैं वे"[1]

इस पूरी कविता से ज़ाहिर होता है कि कवि किसी भी प्रकार की पार्टीबंदी या गुटबाजी के खिलाफ़ है। तो जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि कवि या व्यक्ति की स्वतंत्रता क्या लोकतान्त्रिक मांग है? क्या उसकी स्वतंत्रता निरपेक्ष होनी चाहिए? आज यह सवाल इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि कई अस्मिताएं पिछले कुछ वर्षों से उभरी हैं और उभर रही हैं। अतः थोड़ा ठहर कर इस बात पर विचार कर लेना उचित होगा ।

स्वतंत्रता सापेक्ष शब्द है और प्रत्यय भी। जिसके पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि वह निरंकुश है या उस पर किसी का नियंत्रण नहीं होना चाहिए ! इसका प्रतिपक्ष शब्द परतंत्रता है। इसे समझने के लिए व्यक्ति के बरक्स तंत्र को रखते हैं, जो उसे अनुशासित करता रहता है। व्यक्ति पर अंकुश हो, इसका अर्थ हुआ कि उस पर आयद होने के लिए तंत्र या सरकार की ओर से नियम-क़ानून बनाये जाएँ। ऐसे सुनियंत्रित होकर व्यक्ति या कला हानि नहीं पहुँचा सकेगी। बात तो ठीक मालूम पड़ती है। पर शासन को क्या अन्तिम चीज़ मान लिया जाये? जिससे कि सब कल्याणकारी ही होगा या सब सुन्दर ही सुन्दर होगा। निश्चित रूप से शासन आवश्यक है। किन्तु उसे संचालित करने वाला भी एक वर्ग होता है। इसे शासक वर्ग भी कह सकते हैं। आज यह स्पष्ट है कि हम विकास पर हैं, कारण शासक-वृत्ति का मनुष्य बढ़ती पर है और वह विकसित मानवता का उदाहरण भी है। तभी आवश्यक है कि वह सामान्य रहकर संतुष्ट न हो, उसे विशिष्ट बनना ही पड़ता है । सामान्य लोग मेहनत करते हैं और वह नियंत्रण करता है। इस प्रकार गरीब-अमीर का फासला स्पष्ट है।

इसी प्रकार कवि की स्वतंत्रता को भी समझा जा सकता है। माना जाता है कि कवि को लोक-मंगल की भावना से अनुकूलित होना चाहिए। लोक-मंगल की चिंता में से शासक

---

[1] इतने पास अपने, मेरे समय को..., पृ. 41

वर्ग का उदय होता है। फिर वह लोक-मत को निर्मित और नियंत्रित करता है। लोकमत उस पर अंकुश नहीं होता, लोकमत पर उसका अंकुश होता है। वह नियम बनाता है। नाना कला-विज्ञान उसे भाष्य देते हैं। इस सुगठित और सुनियंत्रित लोकमत से शासक वर्ग का निर्वाचन होता है और वह राज्य का संचालन करता है। राज्य अर्थात मूर्त लोकमंगल। यह लोक-मंगल की भावना ही समग्र होगी। समग्र ही नाना प्रकार के नियमों और नियंत्रणों को तैयार करेगा। एक शासक दल जो केवल नियम रचेगा और उसके उचित पालन का विधान करेगा। यह काम प्रमुख माना जायेगा। दूसरा वर्ग अर्थात शासित समुदाय श्रम करेगा या रचना करेगा। उत्पादन करना इस वर्ग का काम होगा। यह गौण काम माना जायेगा। शासन का काम अभेद दृष्टि और तटस्थ वृत्ति से होना चाहिए। इस बात को स्वीकार किया जा सकता है किन्तु सवाल यह है कि तब नया कैसे आयेगा? क्या कभी ऐसा होगा कि लोक-मंगल सबको ओझल कर ले और उसके पार पहुँचने की आदमी के पास न क्षमता रहे, न आकांक्षा? क्या यह हो सकेगा कि मनुष्य भय में इतना झुके कि किसी के हित में झुकना भूल जाये? क्या यह संभव होगा कि व्यक्ति उस तंत्र में या वर्ग में इतनी पूर्णता अनुभव कर आये कि चारों ओर फैले इस असीम के प्रति निस्संग और निश्चेतन हो जाये? ऐसा शायद ही संभव हो। अतः तंत्र को या शासक वर्ग को सर्वोपरि नहीं माना जा सकता। क्योंकि जहाँ अनुशासन है वहाँ हित के बरक्स अहित भी है। कला की सृष्टि हित से है तो क्या अहित को अधिक महत्व दिया जा सकता है! इससे स्पष्ट है कि शासन या तंत्र सर्वोपरि नहीं है। मनुष्य या कवि की संभावनाओं में वह कुछ कमी भी लाता है। या कह सकते हैं कुछ अहित भी पहुंचाता है। अतः हित ही वह तत्त्व है जो मनुष्य को मनुष्य से कला को कला से बांधता है और इस प्रकार मनुष्य लोकतंत्र के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। तो क्या सब समय सुखात्मक बने रहना ही हित है। इस बात पर भी विचार कर लेना आवश्यक है।

इस बात को कवि के सन्दर्भ में समझना हो तो एक उदाहरण आचार्य रामचंद्र शुक्ल की 'चिंतामणि' से दिया जा सकता है। वह लिखते हैं-"अनुभूति के द्वंद्व से ही प्राणी के जीवन का आरम्भ होता है। उच्च प्राणी मनुष्य भी केवल एक जोड़ी अनुभूति लेकर इस संसार में आता है। बच्चे के छोटे से हृदय में पहले सुख और दुःख की सामान्य अनुभूति भरने के लिए जगह होती है। पेट का भरा या खाली रहना ही ऐसी अनुभूति के लिए पर्याप्त होता है। जीवन के आरम्भ में इन्हीं दोनों के चिन्ह हँसना और रोना देखे जाते हैं पर ये अनुभूतियाँ

बिलकुल सामान्य रूप में रहती हैं, विशेष-विशेष विषयों की ओर विशेष-विशेष रूपों में ज्ञानपूर्वक उन्मुख नहीं होतीं। नाना विषयों के बोध का विधान होने पर ही उनसे सम्बन्ध रखने वाली इच्छा की अनेकरूपता के अनुसार अनुभूति के भिन्न-भिन्न योग संघटित होते हैं जो भाव या मनोविकार कहलाते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि सुख और दुःख की मूल अनुभूति ही विषय-भेद के अनुसार प्रेम, हास, उत्साह, आश्चर्य, क्रोध, भय, करुणा, घृणा इत्यादि मनोविकारों का जटिल रूप धारण करता है।"[1]-आचार्य शुक्ल के इस उद्धरण से सपष्ट है कि सुख-दुःख के द्वंद्व से ही अनुभूति विकसित होती है। और इन दोनों को अलग नहीं किया जा सकता। किन्तु जहाँ प्राथमिकता का सवाल है वहाँ दुखानुभूति को महत्त्व दिया जा सकता है।

इस प्रकार किसी भी लोकतंत्र में व्यक्ति की स्वतंत्रता या कल की स्वच्छंदता का यही तात्पर्य हो सकता है। शासन सीमित होता है। वह अपने लिए दूसरे को पराया और शत्रु मानता है। कला का हितत्व या समवेदना अधिक व्यापक होता है। एक देश के लिए दूसरे देश से बैर रखना तंत्र के लिए आवश्यक हो सकता है और वह इस तरह की होड़ में शामिल भी होता है। जिससे भय उत्पन्न होता है। किन्तु कला या कविता इसलिए अभय है कि वह सामयिकता से बंधी हुई नहीं है। वह प्रत्येक चीज़ को सम्पूर्णता में देखती है।

शमशेर पूरब और पश्चिम की कलात्मक संभानाओं को अपनी आत्मा के ताने-बाने में पिरोकर जो भी नया करते हैं वह अपने देश की काव्य-कला की परम्परा को समृद्ध बनाने के लिए। इस बात का सबूत यह है कि जब संपादक-कवि-आलोचक प्रत्येक कवि की जगह सुनिश्चित करने में लगे हुए थे तब शमशेर प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़े रहकर भी अपने कवि-कर्म में संलग्न थे। शमशेर के निकट कला(वस्तु-रूप) अपनी सक्रिय आवश्यकता की पूर्ति का साधन थी तो मार्क्सवाद उसका संबल। जहाँ से कवि साहस पाता और अपनी कला को समृद्ध बनाता है। तो सबसे पहले देखना होगा कि शमशेर के यहाँ देश किस रूप में आता है। 'मैं भारत गुण-गौरव गाता' (1933) शीर्षक कविता में शमशेर लिखते हैं-

"आर्य शौरी धृति, बौद्ध शान्ति द्युति,
यवन कला स्मिति, प्राच्य कर्म रति,
अमर अमित प्रतिभायुत भारत

---

1 चिंतामणि, प्रथम खण्ड, पृ. 1

चिर रहस्य, चिर ज्ञाता!"[1]

इसके साथ ही जोड़ते हैं कि-

"*वह भविष्य का प्रेम-सूत है,*
इतिहासों का मर्म पूत है,
अखिल राष्ट्र का श्रम, संयम, तपः
कर्मजयी, युग त्राता!"[2]

जो लोग भारत को हिंदू-राष्ट्र मानते आये हैं उनके लिए शमशेर की भारतीय अवधारणा से धक्का लग सकता है। ऐसा भारत जिसमें आर्यों की वीरता, बौद्ध धर्म के शान्ति सन्देश, मुस्लिमों के कला-सौन्दर्य, प्राच्य कर्म आदि ऐसे घुल-मिल गये हों, जैसे इन्हें अलग नहीं किया जा सकता। इनसे ही 'अमर अमित प्रतिभायुत भारत' बना है। यह भारत ही भविष्य का प्रेम-सूत है और इतिहासों के मर्म से उत्पन्न पुत्र है। ऐसा इतिहास जिसमें अनेक जातियों, धर्मों, संप्रदायों के संघर्ष, अंतर्द्वंद, परम्पराएँ आदि समृद्ध दस्तावेज के रूप में जीवित हैं। श्रम, संयम, ताप के बिना अखिल राष्ट्र की परिकल्पना केवल हवाई कल्पना है। अतः कहा जा सकता है कि शमशेर के यहाँ भारत का मानचित्र उपर्युक्त बातों से बनता है। जिसमें सभी धर्मों, सभी जातियों, सभी संस्कृतियों को सम्मान की नज़र से देखा जाता है। ऐसा है हमारा भारत देश।

भारत को स्वतन्त्र देश घोषित किये जाने के उपरान्त 15 अगस्त 1947 को जो जश्न मनाया जा रहा था उसमें कवि भी अपनी हिस्सेदारी 'भारत की आरती' के माध्यम से करता है, साथ ही अपनी चिंताएँ भी प्रकट करता है। क्या हैं कवि की चिंताएं और कैसा है उसका उत्सव, देखिए-

"*गर्व आज करता है एशिया*
अरब, चीन, मिस्र, हिंद-एशिया
उत्तर की लोक संघ शक्तियाँ
युग-युग की आशाएँ वारतीं ।"[1]

---

1 उदिता, मैं भारत का गुण-गौरव गाता, पृ. 17

2 उदिता, मैं भारत का गुण-गौरव गाता , पृ. 17

हर भारतीय को अपने देश पर गर्व करना चाहिए। किन्तु लोकतंत्र को मजबूत बनाते हुए। यह सच्चा लोकतंत्र तभी बन सकेगा जब लोक और तंत्र एक-दूसरे को बनाते हुए आगे विकसित होते रहेंगे। इसलिए पहली आवश्यकता है कि-

"साम्राज्य पूँजी का क्षत होवे
ऊँच-नीच का विधान नत होवे
साधिकार जनता उन्नत होवे
जो समाजवाद जय पुकारती ।"[2]

अधिकार सहित जनता तभी उन्नति के मार्ग पर चल सकती है जब पूंजीवाद का पतन हो तथा ऊँच-नीच का भेद समाप्त हो। यह भेद चाहे जातिगत हो, लिंगगत हो या अर्थगत हो- इसे समाप्त करके आगे बढ़ा जाना चाहिए। जनता का विश्वास ही सबसे महत्वपूर्ण है-

"जन का विश्वास ही हिमालय है
भारत का जन-मन ही गंगा है
हिंद महासागर लोकाश्य है
यही शक्ति सत्य को उभारती ।"[3]

भारत का मानचित्र जनता के बिना अधूरा है। हिमालय की तरह जनता का विश्वास अटल है तथा गंगा की तरह जनता का जीवन अबाध गति से आगे बढ़ता रहता है। लोकशक्ति ही सत्य को बाहर लाती है। ऐसी माँ या धरती तब बनती है जब-

"यह किसान कमकर की भूमि है
पावन बलिदानों की भूमि है
भव के अरमानों की भूमि है
मानव इतिहास को सँवारती ।"[4]

किसानों, शाहीदों की इस पावन भूमि को तथा जगत की आशाओं की भूमि को कौन न याद करना चाहेगा! ऐसी भारत-भूमि मानवीय इतिहासों को न केवल सुरक्षित रखती हैं वरन् उसे सजाती-सँवारती भी है ।

---

1 दूसरा सप्तक, भारत की आरती, पृ. 98

2 दूसरा सप्तक, भारत की आरती, पृ. 98

3 दूसरा सप्तक, भारत की आरती, पृ. 98

4 दूसरा सप्तक, भारत की आरती, पृ. 98

विदेशी साम्राज्य से देश को मुक्त कराना अनिवार्य था। इसलिए शमशेर ने भारत-भूमि के प्रति लोगों में आस्था जगाई तथा 'मैं भारत गुण-गौरव गाता' लिखकर नया उत्साह भरा। किन्तु स्वतन्त्र भारत के लोकतंत्र को मज़बूत बनाने के लिए जो आधार चाहिए थे वे 'भारत की आरती' में प्रकट हुए हैं। देश की स्वतंत्रता पर बलिदान हो जाने वाले हर शहीद को शमशेर सलाम करते हैं। फिर चाहे लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाने के लिए व्याकुल 'का. रूद्रदत्त भारद्वाज की शहादत की पहली वर्षी पर' लिखी कविता ही क्यों न हो-

"धूल में हैं तीन रंग
गड़ा जिस पर मौन भारद्वाज का है-लाल निशान ।
उसी की आभा गगन
पूर्व में लाता ।"[1]

मैले पड़ गये तिरंगे को साफ करने के लिए मौन भारद्वाज का प्रयास भी काफी अहमियत रखता है। पूँजीवाद की पराधीनता से विचलित कवि ही ऐसा लिख सकता है।

कवि शमशेर में शायद सबसे प्यारी चीज़ प्रेम है, जो उनकी कितनी ही कविताओं में फूट-फूटकर छलकता है। शायद अपने देश से कम तो वह अपनी पत्नी को प्यार नहीं करते। क्योंकि वह समूचे भारत को-देश की नयी पीढ़ी को-अपनी पत्नी धर्मवती के अंदर देखते हैं, किन्तु काल ने उनकी पत्नी को उनसे अलग कर दिया। इसलिए शमशेर कल से होड़ लेते रहते थे। शमशेर प्रेमिका के साथ मिलकर, साथ-साथ सारी मुसीबतें झेलते हैं-

"फिर भी क्यों मुझको तुम अपने बादल में घेर लेती हो?
मैं निगाह बन गया स्वयं
जिसमें तुम आँज गईं अपना सुर्मई साँवलापन हो ।"[2]

'फिर भी क्यों' का सुर्मई साँवलापन कवि के दिल में इतना गहरे उतर गया है कि और दूसरे रंग उसमें आसानी से समा सकें। इसीलिए किसी भी लोकतंत्र के रूढ़िवादी समाज में प्रेम की स्वतंत्रता को शमशेर आवश्यक मानते हैं। इस भारतीय रूढ़ समाज में कितने ही प्रेमी-युगलों

---

1 बात बोलेगी, का. रुद्रदत्त भारद्वाज की शहादत की पहली वर्षी पर, पृ. 66

2 उदिता, फिर भी क्यों, पृ. 43

की हत्याएँ झूठी शान के नाम पर हुई हैं। शमशेर का काव्य प्रेम की स्वतंत्रता का राग है और रंग भी।

'शमशेर : मेरी दृष्टि में' मुक्तिबोध ने कहा है- "वास्तविक प्रणय-जीवन काव्य का 'ह्यूमनाइज़िंग' इफेक्ट' हमें आधुनिक रोमैंटिक कविता में अधिक प्राप्त नहीं होता। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है।"[1]-जिस तथ्य की ओर मुक्तिबोध संकेत करते हैं उससे स्पष्ट है कि वास्तविक 'प्रसंग विशिष्ट संवेदनाएँ' किसी भी काव्य के लिए कितनी आवश्यक हैं। 'घनीभूत पीड़ा' (एक सिम्फनी) ऐसी ही कविता है-

"जबांदराजियाँ खुदी की रह गईं ।
तेरी निगाहें कहना था सो कह गईं ।"[2]

कविता की पृष्ठभूमि में चल रहा यह गीत जिस तरह का नाटकीय विधान रचता है वह देखने लायक है। बदलते दृश्य के बीच कविता के आखिरी अंश को देखना उचित होगा-

"लजाओ मत अभाव की परेख ले
समाज आँख भर तुम्हें न देख ले ।"[3]

इस पर कवि-आलोचक विष्णुचंद्र शर्मा का कथन उल्लेखनीय है- "यह 1946 का समाज है। आज़ादी पूर्व की सिम्फनी। यह शमशेर का निजी रोमांस का अनुभव है और आज़ाद भारतीय समाज का एक अभाव। गुलाम समाज में आँख भर कर सच्चाइयों को देखने की ताक़त नहीं होती। इसलिए समाज आज़ादी के पूर्व का कविता के ओट में रहता है। आज़ादी की भावना शमशेर के निजी अभाव की ही स्वाधीन चेतना है। प्रेमी हृदय के यह निजी चित्र मध्यवर्ग की मन:स्थिति के ही करुण चित्र हैं।"[4]-समाज के दबावों को नज़रंदाज़ नहीं किया जा सकता। क्योंकि इन्हीं दबाबों या बंधनों से उस परिस्थिति का जन्म होता है, जो सच्ची स्वतंत्रता के लिए आवश्यक है । यह सच है कि स्वतंत्रता सामजिक जीवन में ही संभव है किन्तु कभी-कभी सामजिक जीवन भी रूढ़ि बनकर रह जाता है।

---

1 समकालीन हिन्दी आलोचना, पृ. 89

2 कुछ कविताएँ, घनीभूत पीड़ा, पृ. 46

3 कुछ कविताएँ, घनीभूत पीड़ा, पृ. 50

4 काल से होड़ लेता शमशेर, पृ. 97

'जमाने का रद्दो-बदल' चाहने वाला कवि ही सबकी स्वतंत्रता का हामी हो सकत है। किन्तु जिस तरह का ज़माना है उससे तो यही लगता है कि-

"तन ढँका जाएगा धागों से, परन्तु
लाज भी तो चाहिए तन के लिए

नाज पकने पर खुले आकाश से
बिजलियाँ गिरती हैं निर्धन के लिए ।"[1]

और अंत में-

"संकुचित है आज जीवन का हृदय,
व्यक्ति मन रोता है जन-मन के लिए ।"[2]

जो व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता चाहता है वह जन-मन की सवतंत्रता के लिए भी व्याकुल होगा । क्योंकि स्वतंत्रता किसी भी लोकतंत्र की पहली शर्त है-

"स्वतंत्र होना है जनतंत्र के सिपाही को ।
कि अपने खून से धोना है इस सियाही को!
-लगे आवाम की ठोकर निजामशाही को!"

जनतंत्र के सच्चे स्वरूप की रक्षा के लिए सन् 1948 में यह आवश्यक था कि कवि निजामशाही को आवाम के साथ मिलकर लात से ठोकर मार दे । यह इसलिए भी आवश्यक था क्योंकि निजामशाही कहीं गृह-कलह का अड्डा ना बन जाये-

"वो बन न जाय कहीं खानाजन्गियों का गढ़ ।"[3]

शमशेर की ऐसी बातें बोलती भी हैं और भेद खोलती भी हैं । व्यक्ति की स्वतंत्रता यदि समाज की स्वतंत्रता से अलग हैं तो उनका कोई अस्तित्व नहीं किन्तु वह स्वतंत्रता यदि-

"दैन्य दानव । क्रूर स्थति ।
कंगाल बुद्धि : मजूर घर भर ।
एक जनता का-अमर वर :
एकता का स्वर ।

---

1 कुछ और कविताएँ, कुछ मुक्तक, पृ. 16

2 कुछ और कविताएँ, कुछ मुक्तक, पृ. 16

3 बात बोलेगी, निजामशाही: 1948, पृ. 63

-अन्यथा स्वातंत्र्य-इति ।"[1]

कवि का मानना है की स्वतंत्रता मनुष्य के लिए न केवल अनिवार्य है बल्कि अपरिहार्य भी है। स्वतंत्रता के बिना न तो लोकतंत्र का अस्तित्व है और न ही मनुष्य या समाज का। इसीलिए कवि का कहना है कि 'वकील करो... '-

'वकील करो
अपने हक के लिए लड़ो ।
नहीं तो जाओ
मरो ।"[2]

साथ ही या तो 'बड़े-बड़े नेताओं के नाम गाते जाओ'

"फिर
हो अगर हिम्मत तो
डटो : यानी के चोर बाज़ार में
अपनी साख
जमाओ ।
खिलाओ हज़ारों, तो
लाखों कमाओ ।"[3]

भारतीय जनतंत्र की क्या यह विडंबना अभी भी बरकरार नहीं है? चापलूसी, घूसखोरी, भ्रष्टाचार आदि के प्रति शमशेर ने पहले ही आगाह कर दिया था। जिस समाज में इस तरह की विकृतियाँ पैदा हो जाती हैं उनमें व्यक्ति की आजादी का कोई महत्व नहीं रह जाता। पूँजीवादी जनतंत्र का विरोध शमशेर की काई कविताओं में प्रकट हुआ है। वह जानते हैं कि वास्तविक या सच्चा जनतंत्र केवल समाज के आर्थिक हितों में ही संभव हो पाता है। इसलिए उनका ज़ोर आरंभिक परिस्थितयों को बदलने पर है। यदि यह आर्थिक परिस्थिति नहीं बदली तो-

"लगी हो आग जंगल में कहीं जैसे,
हमारे दिल सुलगते हैं ।

---

1 दूसरा सप्तक , बात बोलेगी, पृ. 82

2 बात बोलेगी, वकील करो, पृ. 91

3 बात बोलेगी, वकील करो, पृ. 92

हमारी शाम की बातें
लिए होती हैं अक्सर ज़लज़ले महशर के; और जब
भूख लगती हमें तब इन्कलाब आता है ।"[1]

पेट की आग से बड़ी कोई आग नहीं। और जब कोई भी तंत्र या व्यवस्था इसकी उपेक्षा करता है तो-

"सरकारें पलटती हैं जहाँ हम दर्द से करवट बदलते हैं ।
हमारे अपने नेता भूल जाते हैं हमें जब,
भूल जाता है ज़माना भी उन्हें, हम भूल जाते हैं उन्हें खुद ।
और तब
इन्कलाब आता है उनके दौर को गुम करने ।"[2]

इसलिए शमशेर 'बहुत सीधे से प्रश्न उठाते' हैं। एक प्रश्न यह भी है-

'एडिटरी जनता ने
सिखायी हैं कि तनख्वाह ने?
लेता है मेहनताने
ये मुख्तार कि है
कौम के वह दाहिने?"[3]

मीडिया की स्वतंत्रता पर इससे तल्ख़ टिप्पणी और क्या हो सकती है? यह उस ज़माने के लिए जितनी सख्त है उतनी इस दौर के लिए भी। अतः स्पष्ट है कि शमशेर स्वतंत्रता को पूरे परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। शमशेर भारतीय समस्याओं से अंजान कभी नहीं रहे। स्वतंत्रता का मूल्य वह अच्छी तरह समझते थे। भारत में जाति-प्रथा जितनी पुरानी है उतना ही पुराना है उत्पीड़न। इस बात को शमशेर ने भले ही ज़ोर-शोर से न उठाया हो, किन्तु उसके संकेत मिल ही जायेंगे। कव्वाली की तर्ज़ पर राजनीति की यह करवट भी देखिए-

"क्या गुरुजी मनुऽजी को ले आयेंगे?-
हो गये जिनको लाखों जनम गुम हुए ।"[4]

---

1 बात बोलेगी, वकील करो, पृ. 34

2 बात बोलेगी, पृ. 34

3 बात बोलेगी, पृ. 61

4 बात बोलेगी, राजनितिक करवटें: 1948, पृ. 61

भारतीय समाज हो या अन्य देशों का समाज लगभग हर जगह वर्ग के आधार पर सामजिक उत्पीड़न होता रहा है। सदियों से इस उत्पीड़न के खिलाफ उत्पीड़ित समुदाय ने विद्रोह भी किया है। किन्तु यथास्थिति अभी भी बरकरार है। पूँजीवाद ने इस समस्या को और भी गंभीर बना दिया है। शमशेर वर्ग, वर्ण, रंग-भेद से अंजान नहीं थे। इसलिए शमशेर के सामने नस्लीय भेदभाव फैलाने वालों पर कड़ी निगाह है। कवि विश्व की नैतिक पटभूमिका के अंतर्गत यह सवाल उठाता है और बहुत ही नाटकीय ढंग से-

"एक बराबर के चौकोर
दो पत्थर
सजाकर उसने रक्खे
एक के ऊपर एक
सफेद के उपर काला"

कवि काले लड़के के गुस्से में चुनौती भर देते हैं-

"वह उछलकर उसकी गर्दन
दाँत से दबोच लेता है ।
-हाय! हाय! हाय!
छोड़ो! छोड़ो!
-ना ऽ ऽ ऽ ई
तुम सफेद हम
काला!
तुम्हें अब नाईं
छोड़ सकता!
नाईं छोड़ सकता !"[1]

और नेपथ्य में ढोल बजने का संकेत है जो निम्न-वर्ग की विजय-ध्वनि को सूचित करता है। इस कविता के बारे में कवि-आलोचक विष्णुचंद्र शर्मा कर कथन है- "शमशेर की यह नाराज़ कविता है। नए कवियों की नाराज़ कविता और शमशेर की नाराज़ कविता में एक बुनियादी फर्क है। समय से होड़ लेने का मौका हो या आदेश के दंगे या अफ्रीका और अफगानिस्तान के परस्पर विरोधी पक्ष हों, शमशेर पूरा चित्र रचते हैं। नया नाराज़ कवि सिर्फ अपनी नाराज़

[1] प्रतिनिधि कविताएँ, अफ्रीका, पृ. 176

कविता में अपनी नाराज़गी का भाष्य करता है या कविता में फुटनोट जोड़ता चलता है। शमशेर नाराज़ नीग्रो के साथ खुद को उसके पक्ष में खड़ा पाते हैं। वह उसी नाराज़ पक्ष की आस्था के कवि हैं।"[1]- स्पष्ट है शमशेर मानवीय स्वतंत्रता के कवि हैं साथ ही समानता के कवि भी। लोकतंत्र की गतिशील प्रक्रिया को निरंतर सुदृढ़ बनाये रखना हम सभी के लिए आवश्यक है। शमशेर ने यह काम अपने दौर में किया, अब यह हम पर है कि हम उसे और कितना मजबूत बना सकते हैं।

लोकतंत्र की सुरक्षा के लिए आवश्यक है कि मानव द्रोही शक्तियों को पराजित किया जाये। फिर यह चाहे आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कार ही क्यों न हों। विज्ञान सम्बन्धी खोजें व आविष्कार यदि मानव हित में नहीं हैं तो उनकी क्या उपयोगिता है? आधुनिक सभ्य समाज के लिए यह प्रश्न जितना महत्वपूर्ण है उतना ही महत्वपूर्ण शमशेर के लिए भी। इसलिए शमशेर कहते हैं-

"किस एटमगर से पूछे कि-इंसान के
हीरोशिमा में कितने अटम गुम हुए!"[2]

हथियारी ताकतों पर नियंत्रण लगाना इसलिए आवश्यक है क्योंकि मुल्कों के बीच न केवल आपसी प्रतिस्पर्धा बढ़ती है वरन् उन शक्तियों का विस्तार होता है जो आगे चलकर साम्राज्यवाद में परिणति हो जाते हैं। शमशेर इस तरह की होड़ के खिलाफ हैं। उनमें यदि यह भावना पनप सकी तो महज इसलिए कि भारतीय राष्ट्र-राज्य भी कहीं इसी तरह की उलझनों में न फँस जाये। इसी तरह की एक उलझन थी जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया। तब कवि-मन क्षुब्ध हो उठा तथा व्यंग्य के द्वारा कहने लगा-

"सूरज को रोज़ हमसे पहले देखने वालों
क्या तुम अंधे हो।"[3]

या फिर-

"दो हज़ार साल में चीन को
अक्ल की डाढ़ नहीं निकली।"[1]

---

1 काल से होड़ लेता शमशेर, पृ. 143

2 बात बोलेगी, राजनितिक करवटें: 1948, पृ. 61

3 चुका भी नहीं हूँ मैं, सत्यमेव जयते, पृ. 41

कवि के मन में देश प्रेम का जो भाव प्रकट होता है उससे ज़ाहिर है कि वह सत्य के पक्ष में हैं। तभी तो उनका विश्वास भारतीय सीमा से लगे हिमालय पर है। यह वही हिमालय है जो कालिदास के यहाँ भी आया है।

शमशेर मानते रहें है कि धार्मिक कट्टरता लोकतंत्र के लिए सबसे बड़ा खतरा है। विभिन्न गण-समूहों की जहाँ लंबी परम्परा रही हो वहाँ धार्मिक उन्माद को बढ़ावा नहीं दिया जा सकता। शमशेर इसी कट्टरता के खिलाफ़ जंग छेड़ते हैं-

"यह किसने दाँत निकाले हैं!
यह किसने आँखें ऊपर कीं!
यह किसने लट्ठ संभाले हैं!
यह किसकी खोपड़ियाँ तड़कीं?!
-देखो, ये हिंदू, वो मुस्लिम!
ये 'धर्म' और 'मज़हब' बाले हैं!"[2]

इन व्यंग्योक्तियों तथा शब्द-चित्रों के साथ शमशेर का यह रंग भी देखा जा सकता है-

"हैं आसमाने-हिंद के तारे दोनों!
हैं सरज़मीने-पाक के व्यारे दोनों!
यह किसकी नज़र खाए जाती उन्हें
आपस में ही लड़-लड़ के हारे दोनों!"[3]

इस प्रकार दोआब की कविता को चित्रित करने वाल कवि धार्मिक कट्टरता के उसी प्रकार खिलाफ रहा है जिस प्रकार लिपि सम्बन्धी कट्टरता के। उसने शब्दों को गाया है, माँजा है, फिर उसमें नए-नए रंग भरे हैं। कला को समृद्ध करने वाला कवि स्वतंत्रता को एक मूल्य की तरह आगे बढ़ाता है। जिस प्रकार वह कवि की सवतंत्रता का हामी है उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की। किन्तु यह स्वतंत्रता सापेक्ष ही मानी जानी चाहिए। सबको समान दृष्टि से समझने वाला कवि गुरुजी के मनु पर व्यंग्य भी करता है और नस्लीय भेदभाव पैदा करने वालों पर नाटकीय व्यंग्य भी। वह तो सबकी सुख-शान्ति का राग गाता है। कह सकते हैं कि भारतीय कवि अपनी सीमा भर लोकतंत्र को भाषा के ज़रिये समृद्ध करता रहा है।

---

1 चुका भी नहीं हूँ मैं , सत्यमेव जयते, पृ. 39

2 बात बोलेगी, 'धर्म' और 'मजहब', पृ. 51

3 बात बोलेगी, रुबाई, पृ. 52

अध्याय दो

सौन्दर्य का शास्त्र !

2. सौन्दर्य का शास्त्र !

सौन्दर्य वस्तुतः क्या है, यह कहना इतना आसान नहीं जितना सामान्यतः और विशेषतः मान लिया जाता है। भारतीय चिंतकों ने इस पर विस्तृत विचार किया है। किन्तु हम हिन्दी के सुप्रसिद्ध आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के इस उद्धरण को देना उचित समझते हैं- "सौन्दर्य असल में वस्तु की समग्रता की अनुभूति है। इसके दो मोटे रूप हैं-एक तो वह जो हमें अभिभूत करता हैं, प्रवाहित करता है, चालित करता हैं, पर इसलिए नहीं कि वह ऐसा करना चाहता है। हम यह ठीक नहीं जानते हैं कि वह किसी अन्य अदृश्य शक्ति की इच्छा से ऐसा करता है या नहीं। कोई अदृश्य शक्ति उसके द्वारा हमें चालित, प्रेरित या अभिभूत करना चाहती है। परन्तु हम चालित, प्रेरित और अभिभूत होते हैं, यह बात असंदिग्ध है। गुलाब का फूल है। वह वर्ण से, रूप से, गंध से हमें मोहित करता है। हम बिलकुल नहीं जानते कि ऐसा वह चाहता है या नहीं। हमें वह लाल दिखता है। परन्तु 'लाल' शब्द हमारी रचना है। हमें यह भी नहीं मालूम की वह स्वयं अपने को 'लाल' समझता है या नहीं। 'लाल' कहकर हम एक चाक्षुष सत्य का परिचय मात्र देते हैं। परन्तु भाषा की सीमा है। लाल सैंकडों चीजे होती हैं। सबको एक ही लाठी से हांकना संभव भी नहीं है, उचित भी नहीं है। मनुष्य की यह महिमा है कि उसने जैसे-तैसे सीमाओं के बंधन को अस्वीकार करते हुए अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति दी है 'लाल' शब्द के द्वारा।" - दूसरी बात यह कि- "पद-पद पर मानव-चित्त के अपार औत्सुक्य को प्रकट करने वाली इच्छा-शक्ति भाषा की सीमा से टकराती है। अपनी अनुभूति को जब भाषा द्वारा सीधे नहीं प्रकट कर पाती तो उपमा का सहारा लेती है।...उत्प्रेक्षा का सहारा लेती है...छंद से, स्वारघात से, काकु से, वचन-वक्रता से, हाथ घुमाकर, मुँह बनाकर अर्थात अभिनय से, इस अपार इच्छा-शक्ति का समाधान करना चाहता है। इच्छा अनंत है क्रिया सांत है। इच्छा नाद है-कन्टिनुअम है, क्रिया बिंदु है-क्वेंटम है। इच्छा गति है, क्रिया स्थिति है। गति और स्थिति का द्वंद्व चलता रहता है। इसी से रूप बनता है, छंद बनता है, संगीत बनता है, नृत्य बनता है। इच्छा काल है, क्रिया देश है। इसी देश-काल के द्वंद्व से जीवन रूप लेता है प्रवाह के रूप में।...एक प्राकृतिक सौन्दर्य है, दूसरा मानवीय-इच्छा शक्ति का विलास है। दूसरा

सौन्दर्य प्रथम द्वारा चालित होता है पर है मनुष्य के अंतरतर की अपार इच्छा-शक्ति को रूप देने का प्रयास। एक केवल अनुभूति देकर विरत हो जाता है। दूसरा अनुभूति से उत्पन्न होकर अनुभूति-परम्परा का निर्माण करता है।"[1] इस लंबे उद्धरण से कई बातें स्पष्ट हो जाती हैं। किन्तु मुख्य बात यह है कि प्राकृतिक सौन्दर्य के अतिरिक्त जो दूसरा सौन्दर्य है वह मानव निर्मित है। इसीलिए द्विवेदी जी इस दूसरे प्रकार के सौन्दर्य को लालित्य कहना बेहतर समझते हैं। अर्थात जो मानव द्वारा रचित हो।

सौन्दर्य की परिभाषा या शास्त्र गढ़ने वालों पर अज्ञेय जी कटाक्ष करते हुए लिखते हैं- "सौन्दर्य क्या है, हम नहीं जानते; सौन्दर्य की परिभाषा बड़े-बड़े मर्मज्ञ नहीं कर सके और हम 'गहि-गहि गरब गरुर' इस कंटकाकीर्ण पथ पर चलने वाले नहीं है। किन्तु सौन्दर्य क्या है, यह न बता पा कर भी सुन्दर क्या है यह हम जानते हैं, पहचानते हैं, बता सकते हैं कि क्या सुन्दर होता है। और सुन्दर क्या है, यह बता सकने का अर्थ यह है कि हम कुछ ऐसे गुणों को पृथक कर सकते हैं जिनके कारण सुन्दर सुन्दर है। वे तत्त्व क्या हैं? उनकी तालिका प्रस्तुत करना अनावश्यक है। यहाँ आग्रहपूर्वक यही दोहराना यथेष्ट है कि सौन्दर्य-बुद्धि का व्यापार है: बुद्धि के द्वारा ही हम उन तत्त्वों को पहचानते हैं, मानव का अनुभव ही उन तत्त्वों की कसौटी है।"[2]- अज्ञेय जी यह भी मानते हैं कि सुन्दर के बोध का आधार गोचर अनुभव है। उनके वाक्य हैं- "हम कहते हैं लय अथवा 'रिदम'। शैशवकाल से ही हम जानते हैं कि हृदय का लययुक्त सम स्पंदन या लय-भंग उद्वेग, परेशानी, असुख के चिन्ह हैं। तब यदि हम मानते हैं कि लयमयता कला का अथवा सुन्दर का एक मूल गुण है, तो क्या यह अपने अनुभूत सत्य का निरूपण ही नहीं है? इसी प्रकार हम मानते हैं कि सीधी रेखा सुन्दर नहीं होती, वक्र रेखाएँ सुन्दर होती हैं: यह क्या फिर हम अपना अनुभव नहीं दुहरा रहे हैं? हमारे अंगों का कोई भी सहज निक्षेप वक्रता या गोलाई लिए हुए होता है- अबोध शिशु भी जब हाथ-पैर पटकता है तो मंडलाकार गति से-सहज गति सीधी-सीधी रेखा में होती ही नहीं, और सीधी रेखा में अंग-संचालन अत्यंत क्लेश-साध्य होता है। अतः वक्रता को कला-गुण या सौन्दर्य-तत्व मानने में हम फिर अपना अनुभव दोहरा रहे हैं : गोचर अनुभव का कार्य-कारण-ज्ञान के

---

1 हजारी प्रसाद द्विवेदी संचयिता, पृ. 412-413

2 सौन्दर्य-बोध और शिवत्व-बोध-अज्ञेय(संकल्प का सौंदर्यशास्त्र, पृ. 79)

सहारे(बुद्धि द्वारा) प्राप्त किया हुआ निचोड़ ही हमारे सौन्दर्य-बोध का आधार है। और चित्र या मूर्ति में जो रेखा की वक्रता है, अर्थात जो दृश्य, स्पृश्य अथवा स्थूल है, वही यदि काव्य में आकर उक्ति की वक्रता का परम सूक्ष्म रूप ले लेती है, तो क्या हमरी बुद्धि उसे पकड़ नहीं सकती? गोचर अनुभव से पाया हुआ सूक्ष्म-बोध क्या वहाँ हमारा सहायक नहीं होता?"[1]- अज्ञेय जी की बातों से स्पष्ट है कि गोचर मानव अनुभव में वक्र रेखा की गति मंडलाकार होती है और सूक्ष्म-बोध सहायक होता है।

जैसा कि पहले देखा जा चुका है कि सुंदरता का बोध मात्र इन्द्रिय-बोध नहीं है। क्योंकि गोचर मानव अनुभव भी एक सा नहीं है। मुक्तिबोध तो सौन्दर्य-प्रतीति और सामजिक दृष्टि में विरोध देखने वाले दार्शनिकों की कृत्रिम विभाजित-बुद्धि पर व्यंग्य करने के बाद लिखते हैं- "कवि, कहानी-लेखक, उपन्यासकार की सौन्दर्य प्रतीति में वह सामजिक दृष्टि सन्निहित है, जिसका उसने उन जीवन-प्रसंगों के मार्मिक आकलन के समय उपयोग किया था। इस सामजिक दृष्टि के बिना वह सौन्दर्य-प्रतीति ही असंभव थी। हो सकता है कि यह दृष्टि उसने परम्परा से, सामाजिक-राजनैतिक वायुमंडल से, प्राचीन तथा नवीन के संस्कारों-परिष्कारों से प्राप्त की हो। किसी भी विषय के आत्मगत आकलन तथा संकलन करने के समय से हमारे मन में, उसकी विविध बातों का जो मूल्यांकन शुरू होता है वह अंत तक रहता है, जब तक कि वह सृजनशील प्रक्रिया समाप्त नहीं हो जाती। सृजनशील प्रेरणा या बुद्धि स्वयं एक आलोचनाशील मूल्यांकनकारी शक्ति है, जो इस मूल्यांकन के द्वारा ही, अपने प्रसंग को उठाती है और उसे कलात्मक रूप से प्रस्तुत करती है। बिना मूल्यांकनशील शक्ति के, कोई सृजन, कम से कम साहित्यिक सृजन, नहीं ही हो सकता है चाहे वह प्रातःकाल में गुलाब सूंघने का, प्रणयिनी के चुम्बन या कारखाने में हड़ताल का प्रसंग हो। जब-जब ये चित्र सृजनशील प्रक्रिया का एक अंग बनेंगे, उनमें उचित काट-छांट और संकलन होता रहेगा। इसकी पूरी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया में हमारी मूल्यांकनकारी शक्ति, बराबर उसी बात को लेगी जिसे हम मार्मिक समझते हैं। इस मूल्यांकनकारी शक्ति के बिना, हम मार्मिक अंश का संपादन नहीं कर सकते। दूसरे शब्दों में हमारी सृजन-प्रतिभा जीवन-प्रसंग की उद्भावना से लेकर तो अन्तिम संपादन तक अपनी मूल्यांकनकारी शक्ति का उपयोग

---

[1] सौन्दर्य-बोध और शिवत्व-बोध-अज्ञेय(संकल्प का सौंदर्यशास्त्र, पृ. 79-80)

करती है।...मतलब यह कि जीवन-प्रसंग में तल्लीनता प्राप्त कर हम इतने डूब नहीं जाते कि समाधि लग जाती हो, वरन् मूल्यांकनकारी शक्ति के सचेत प्रयोग से हम उसके मार्मिक अंश उठाते हैं। अपनी ज्ञानसंवदनाओं और संवेदनाज्ञान के प्रयोग से हम उनके उचित अंशों को प्रस्तुत करने के लिए अनवरत मूल्यांकन और सतत संपादन करते जाते हैं चाहे वह चित्रकला ही क्यों न हो। ...सौन्दर्य-प्रतीति की डुग्गी पीटनेवाले लोग सामाजिक दृष्टि से भले ही ऊपर से थोपी हुई समझें, वह वस्तुतः यदि दृष्टि है तो कभी भी थोपी हुई नहीं रहती, वरन हमारे अंतर का एक निजचेतस आलोक बनकर सामने आती है। और जिस सामजिक दृष्टि में यह निजचेतस आलोक नहीं है, वह दृष्टि नहीं है, और कुछ भले ही हो।"[1]-स्पष्ट है कि साहित्यिक सृजन मशीनी सृजन से भिन्न है। इसीलिए कवि की मूल्यांकनकारी शक्ति एक पूरी प्रक्रिया से गुज़रती है तथा जीवन-प्रसंग के मार्मिक अंश को ज्ञानसंवेदनाओं व संवेदनाज्ञान के प्रयोग से प्रस्तुत करती है। कविता, साहित्य, और कला पर यह सामान्यतः लागू होता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मानव द्वारा रचित सौन्दर्य प्राकृतिक सौन्दर्य से अलग नहीं है। मानव अनुभव गोचर वस्तु का होता है। सामजिक दृष्टि कवि के अंदर निजतेजस का आलोक बनकर सामने आती है। इसीलिए कवि की मूल्यांकनकारी शक्ति एक पूरी प्रक्रिया से गुज़रती है तथा जीवन-प्रसंग के मार्मिक अंश को ज्ञानसंवेदनाओं व संवेदना ज्ञान के प्रयोग से प्रस्तुत करती है। कविता या साहित्य में यह प्रक्रिया सामान्यतः लागू होती है। किन्तु कैसे? इस बात को समझने के लिए काव्य या साहित्य का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाये। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी 'मात्र हमारे यहाँ' का ब्रह्मास्त्र नहीं चलाते अपितु शब्द और अर्थ के 'साहित्य' की चारुता का विचार करते हुए उसे उच्चतर पटभूमि पर रखकर देखते हैं। वे लिखते हैं- "काव्य भी स्थूल जगत से विच्छिन्न होकर नहीं रह सकता; क्योंकि शब्द और अर्थ ही उसके शरीर हैं और अर्थ शब्दों द्वारा सूचित बाह्य सत्ता को प्रकट करते हैं। एक व्यक्ति के चित्त में उचित अर्थ को दूसरे के चित्त में प्रवेश करके ही शब्द सार्थक होता है। भावावेग द्वारा कम्पित और आंदोलित शब्दार्थ अपने सीमित अर्थ से अधिक को प्रकाशित करता है। शब्द के अभिधेय अर्थ से कहीं अधिक को प्रकाशित करने वाली शक्ति को प्राचीनों ने नाना

---

[1] मुक्तिबोध रचनावली, खण्ड 5, पृ. 187-88

नाम देकर स्पष्ट करना चाहा है। सबसे अधिक प्रचलित और मान्य शब्द 'व्यंजना' है। अनुप्रास के साथ उसकी तुलना करके उसी भावावेगजनित कंपन की ओर इशारा किया गया है। छंद उस आवेग का वाहन है। छन्दोहीन भाषा में कल्पना और सम्मुर्तन तो हो सकता है, पर आवेग का कंपन नहीं होता। प्राचीन कथाओं की गद्य समझी जाने वाली भाषा में भी एक प्रकार का 'छंद' है -एक प्रकार की वक्र कम्पनशील नृत्यभंगिमा।...यह भाषा ही छंदोमयी है; इसमें छंद है, झनकार है, लोच है, वक्रता है जो अर्थ में आवेग भरने का प्रयत्न करते हैं।...अनुप्रास भावावेग के वेग में नृत्य का छंद जोड़ता है, जब एक ही ध्वनि बार-बार दूहराई जाती है तो श्रोता आवेग की वक्रिमता से सहज ही प्रभावित हो जाता है।"[1] -काव्य के इन गुणों से संपृक्त होकर संगीत अपनी विशिष्टता प्राप्त करता है। कविता और संगीत के अंतर्संबंध पर विचार करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी जी लिखते हैं- "कविता और संगीत के सम्बन्ध में विचार करते समय हम दो सर्वाधिक अमूर्त्त कला-प्रक्रियाओं का विवेच करते होते हैं। कविता में शब्द से अर्थ की प्रक्रिया चलती है, जबकि संगीत में अर्थ सीधे ध्वनि या नाद से जुड़ा हुआ है, जो स्पष्ट ही अनुभव की प्राचीनतर और अधिक समय निरपेक्ष तथा सार्वभौम प्रक्रिया है। शब्द से अर्थ का सम्बन्ध यादृच्छिक है जब कि नाद की सत्ता स्वयं अपने में सम्पूर्ण है। संगीत के उपादान सुर हैं जो जल अथवा वायु की तरह सृष्टि के अधिक मूलगामी, प्राकृतिक और विशुद्ध तत्त्व हैं, और इसीलिए कम प्रयोगशक्य हैं। यही कारण है जिससे कि हिन्दुस्तानी शास्त्रीय मौखिक संगीत की शताब्दियों पुरानी परम्परा में प्रयोग अपेक्षाकृत कम हुए हैं। प्रायः व्यंग्य में कही जाने वाली उक्ति कि जितना वह बलवती है उतना ही पूर्ववत रहती है, कहीं गम्भीर निष्ठा के साथ कहा जा सकता है तो संगीत कला के लिए।"[2]- इस कथन में जो मुख्य है वह यह कि कविता में शब्द से अर्थ की प्रक्रिया चलती है, जबकि संगीत में अर्थ सीधे ध्वनि या कि नाद से जुड़ा हुआ है। अर्थात शब्द से अर्थ की प्रक्रिया में सहज अंतर्संबंध है। कह सकते हैं कि काव्यगत प्रभाव में संगीत की सहज गति तभी मानी जा सकती है जब शब्दालंकार में अर्थ का भार कुछ न कुछ बना रहे।

---

1 हजारी प्रसाद द्विवेदी संचयिता, पृ. 365-366

2 साहित्य के नए दायित्व(संचार-साधन और कला माध्यमों के सन्दर्भ में), पृ. 57-58

इस प्रकार कविता से शब्द, अर्थ, व्यंजना, छंद, वक्र कम्पनशील नृत्य भंगिमा तथा संगीत का सहज सम्बन्ध है। इस संबंध से काव्यकला बनती है। और इस काव्यकला को भामह के 'शब्दार्थो सहितौ काव्यं' से समझाते हुए डॉ. एस-सुरेन्द्र बारलिंगे लिखते हैं- "वस्तुतः वे हमें कला माध्यम तथा कलाकार के सन्देश के बीच के सम्बन्ध को समझने की अंतर्दृष्टि दे रहे हैं। प्रस्तुत सन्दर्भ में उनका वर्ण्य विषय काव्य है, अतः वे 'शब्द' और 'अर्थ' की बात कर रहे हैं। शब्द और अर्थ अथवा वाक्य और वाक्य तितली के दो पंखों की भांति हैं। काव्य के प्रसंग में उन्हें महत्वपूर्ण समझना चाहिए। सामान्य भाषा में संभवतः आशय, वाच्य अथवा वाचक अधिक महत्वपूर्ण हो सकता है। परन्तु काव्य में इन दोनों को और न एक के सन्दर्भ को दृष्टि में रखे बिना दूसरे पर स्वतन्त्र रूप से विचार ही किया जा सकता है।"[1] - शब्द और अर्थ या वाचक व वाच्य का जैसा सम्बन्ध काव्य में है वैसा ही सम्बन्ध कला में भी। जबकि विजेन्द्र जी लिखते हैं- "हम उसका(प्रकृति) कविता में अपनी तरह से पुनर्सृजन कर सकते हैं। उसे कलात्मक आकृति दे सकते हैं। उसका रूपकों द्वारा मानवीकरण किया जा सकता है। एक तरह से कवि ने अपने वस्तुजन्य अनुभवों का ही बिम्बों, रूपकों और शब्दों के द्वारा पुनःसृजन किया है। यानी वे अनुभव जो वस्तुजगत के, एक प्रकार से, बिम्ब ही हैं। हम ऐसा कुछ नहीं सिरजते जो हमने प्रत्यक्ष या परोक्ष अनुभव नहीं किया हो। किसी अनुभव का आधार वस्तुजगत ही है। इसीलिए सृजन के बुनियादी स्रोत बाहर हैं। कल्पना बिम्बों के माध्यम से रचनात्मक चिंतन है। हम ऐसी किसी चीज़ की कल्पना नहीं कर सकते, जिसे हमने इन्द्रियों द्वारा न जाना हो। जैसा मैंने कहा है कि पुनस्सृजन सीधा सपाट कर्म नहीं है। एक तो इसमें मेरा पूरा आभ्यंतर घुला-मिला रहता है। दूसरे, हम वस्तु जगत को इस तरह पुनस्सृजित करते हैं कि सृजित वस्तु नई, मौलिक और बड़ी अनहोनी लगने लगे कई बार लगता है कि जो पुनस्सृजित हुआ है वैसे कभी न तो पहले कभी सोचा, न देखा और न सुना। यह एक अलग बात है। पर कविता में जो घटित हुआ है वह कभी जीवन में चाहे उस तरह न घटा हो फिर भी वह घट सकता है इसीलिए कविता सबसे ज्यादा संभावित सच को रचती है। एक ऐसा संभावित सच जिसे हम काव्य तर्क से समझ सकते हैं।"[2] सृजन के बुनियादी स्रोत

---

1 भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की नयी परीभाषा, पृ. 26-27

2 सौन्दर्यशास्त्र : भारतीय चित्त और कविता, पृ. 92-93

मात्र बाहर मानने वाले विजेन्द्र जी वस्तु को अधिक महत्त्व देते हैं। जबकि भिन्न सन्दर्भ में द्विवेदी जी अर्थ की वक्रिमता को भी समान महत्त्व देते हैं –"अर्थ की वक्रिमता को प्रकट करने वाली शक्तियां मनुष्य के चित्त में गुदगुदी ज़रूर उत्पन्न करती है, साहित्य में उनकी आवश्यकता भी होती है। इन सूक्तियों के सहारे कोमलीकृत चित्त में कवि सहज ही भावों को प्रवेश करा देता है। वृहत्तर मानव जीवन को गाढ़ भाव से उपलब्ध कराने में सूक्तियां सहायक होती हैं, परन्तु उससे विच्छिन्न होने पर उनकी उपयोगिता कम हो जाती है।" -इसलिए द्विवेदी जी मानते हैं कि –"केवल गतिमात्र आ जाने से वह उद्देश्य सिद्ध नहीं होता जो काव्य का प्रधान उद्देश्य है। गति तो जड़ पिंडों में भी होती है। यह धरित्री-खण्ड न जाने कब से गतिशील है, लेकिन जड़ता उसकी गति में बाधा पहुंचाती है। जड़ पिंड घूमफिर कर एक ही स्थान पर आ जाता है, चेतन आगे निकल जाता है। वर्तुलाकार मार्ग गति में संचरित जड़धर्म-जन्य बाधा का परिणाम है, वह पद-पद पर बाधा पहुंचाता है और जड़ पिंड चक्करदार मार्ग में घूमने को बाध्य होता है। गति के साथ आगे बढ़ना भी आवश्यक है। इसी को 'प्रगति' कहते हैं। यह चेतना की अपनी विशेषता है। जब तक सूक्तियों में यह चेतन धर्म नहीं संचरित होता तब तक छंद उनमें गति के वेग भर दे सकते हैं, प्रगति का उत्साह नहीं संचरित कर सकते। जो कवित्व मनुष्य को घुमाफिरा कर जहाँ का तहाँ छोड़ देता है उसमें गति तो है लेकिन प्राण नहीं है। कुछ प्राण भी चाहिए। केवल कहना तो कहना नहीं है, कहने की चरितार्थता इस बात में है कि मनुष्य को आत्म-धर्म के प्रति सचेतन बनाये। जिस कहने से कहने वाले की वेदना प्रत्यक्ष न हो जाये, श्रोता का हृदय सहानुभूति से पूर्ण न हो जाये, उसमें स्वाद क्या है भला!"[1] -स्पष्ट है शब्दार्थ के साथ-साथ समवेदना भी होनी चाहिए। कह सकते हैं कि हमारी अन्तःसत्ता की तदाकार परिणति सुंदरता के लिए आवश्यक है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी सौन्दर्य को समझाने के क्रम में योरोपीय कलावाद की खिल्ली उड़ाते हुए लिखा है- "सौन्दर्य बाहर की कोई वस्तु नहीं है, मन के भीतर की वस्तु है। योरोपीय कला समीक्षा की यह एक बड़ी ऊंची उड़ान या बड़ी दूर की कौड़ी समझी गई है। पर वास्तव में यह भाषा के गड़बड़ झाले के सिवा और कुछ नहीं है। जैसे वीरकर्म से पृथक वीरत्व कोई पदार्थ नहीं वैसे ही सुन्दर वस्तु से पृथक सौन्दर्य कोई पदार्थ नहीं। कुछ रूप-रंग की

[1] हजारी प्रसाद द्विवेदी संचयिता, पृ. 369-70

वस्तुएं ऐसी होती है जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिए हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती है कि उसका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में ही परिणत हो जाते हैं। हमारी अन्तःसत्ता की यही तदाकार-परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है। इसके विपरीत कुछ रूप-रंग की वस्तुएं ऐसी होती हैं कि जिनकी प्रतीति या जिनकी भावना हमारे मन में कुछ देर टिकने ही नहीं पाती और एक मानसिक आपत्ति-सी जान पड़ती है। जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से तदाकार परिणति जितनी ही अधिक होगी, उतनी ही वह वस्तु हमारे लिए सुन्दर कही जायेगी। इस विवेचन से स्पष्ट है कि भीतर-बाहर का भेद व्यर्थ है। जो भीतर है वही बाहर है।"[1]- इस विवेचन को स्पष्ट करने के उपरान्त आचार्य शुक्ल लिखते हैं- "जैसा कि कहा जा चुका है, सौन्दर्य का दर्शन मनुष्य मनुष्य ही में नहीं करता, प्रत्युत पल्लव-गुम्फित पुष्पहास में, पक्षियों के पक्षजाल में, सिन्दुराभ सांध्य दिगंचल के हिरण्यमेखला-मंडित घनखण्ड में, तुषारावृत्त तुंग-गिरि-शिखर में, चन्द्रकिरण से झलझलाते निर्झर में और न जाने कितनी वस्तुओं में वह सौन्दर्य की झलक पाता है।"[2]- शुक्ल जी की इन बातों से स्पष्ट है कि भीतर और बाहर में कोई भेद नहीं है। साथ ही सुंदरता केवल मानव तक सीमित नहीं है अपितु प्रकृति के विभिन्न अनुभवों में भी है। यह बात तब और महत्वपूर्ण हो जाती है जब विषाक्त वायू चारों तरफ फैल रही हो।

शास्त्र के सौन्दर्य के बरक्स याद आते हैं मुंशी प्रेमचंद, जिन्होनें 'साहित्य का उद्देश्य' शीर्षक से निबंध में लिखा है- "अब साहित्य ने यह काम अपने जिम्मे ले लिया है और उसका साधन सौन्दर्य-प्रेम है। वह मनुष्य में इसी सौन्दर्य-प्रेम को जगाने का यत्न करता है। ऐसा कोई मनुष्य नहीं, जिसमें सौन्दर्य की अनुभूति न हो। साहित्यकार में यह वृत्ति जितनी ही जागृत और सक्रिय होती है, उसकी रचना उतनी ही प्रभावमयी होती है। प्रकृति-निरीक्षण और अपनी अनुभूति की तीक्ष्णता की बदौलत उसके सौंदर्यबोध में इतनी तीव्रता आ जाती है कि जो कुछ असुंदर है, अभद्र है, मनुष्यता से रहित है, वह उसके लिए असह्य हो जाता है। उस पर वह शब्दों और भावों की सारी शक्ति से वार करता है। यों कहिए कि वह मानवता, दिव्यता और भद्रता का बाना बाँधे होता है। जो दलित है, पीड़ित है, वंचित है -चाहे वह

---

1 चिंतामणि, पृ. 96

2 चिंतामणि, पृ. 97

व्यक्ति हो या समूह, उसकी हिमायत और वकालत करना उसका फर्ज है। उसकी अदालत के सामने वह अपना इस्तगासा पेश करता है और उसकी न्याय-वृत्ति तथा सौन्दर्य-वृत्ति को जाग्रत करके अपना यत्न सफल करता है।"[1]- इसीलिए प्रेमचंद जी का ज़ोर इस बात पर था कि- "उसकी(कलाकार) दृष्टि अभी इतनी व्यापक नहीं कि जीवन-संग्राम में सौन्दर्य का परमोत्कर्ष देखे। उपवास और नग्नता में भी सौन्दर्य का अस्तित्व संभव है, इसे कदाचित वह स्वीकार नहीं करता। उसके लिए सौन्दर्य सुन्दर स्त्री में है -उस बच्चों वाली गरीब रूप-रहित स्त्री में नहीं जो बच्चे को खेत की मेड़ पर सुलाये पसीना बहा रही है ! उसने निश्चय कर लिया है कि रंगे होठों, कपोलों और भौंहों में निःसंदेह सुंदरता का वास है, उसके उलझे हुए बालों, पपड़ियों पड़े होठों और कुम्हलाये हुए गालों में सौन्दर्य का प्रवेश कहाँ?"[2]-प्रेमचंद जी का यह व्यंग्य है आर्टिफीशियल लोगों पर। जो वैविध्य पूर्ण सहज जीवन को महत्त्व नहीं देते, उनके लिए मुंशी प्रेमचंद का उपर्युक्त कथन भी महत्त्व नहीं रखता।

मात्र रूप-रंग पर ज़ोर देने वाले ब्यूटी कम्पटीशन के आयोजकों को प्रभाकर श्रोत्रिय जी का यह कथन भी देखना चाहिए- "रूप का संक्रमण नहीं होता, गुण का संक्रमण होता है। गुण के संक्रमण की इच्छा यथार्थ है और सामजिक विकास का आधार भी। इसलिए जब हम विश्व के सौन्दर्य की दैहिक आधार पर पराकाष्ठा तय करते हैं तो भूल जाते हैं कि हम स्त्री के और शायद समस्त मानवता के सौंदर्यबोध को एक झूठी, कृत्रिम प्रवंचना में भुलाकर मानवता के भाव-सौन्दर्य, कर्म-सौन्दर्य, चरित्र-सौन्दर्य, साहस, मूल्य को नष्ट कर रहे हैं। जिस दिन शरीर की कसौटी पर कोई सुन्दरी विश्व विजय करती है उसी दिन दुनिया भर की स्त्रियाँ पराजित हो जाती हैं-यानी स्त्री के सारे गुण, सारे मूल्य और सारी उपलब्धियाँ।"[3] इस कथन से स्पष्ट है कि रूप का संक्रमण नहीं होता वरन् वस्तु के गुण का संक्रमण होता है। सौन्दर्य के दर्शन के आधार पर चलने वाले लोगों पर मुंशी प्रेमचंद और प्रभाकर श्रोत्रिय के कथन उपयुक्त बैठते हैं।

---

1 साहित्य का उद्देश्य-प्रेमचंद (हिन्दी साहित्यशास्त्र, पृ. 29)

2 साहित्य का उद्देश्य-प्रेमचंद (हिन्दी साहित्यशास्त्र, पृ. 30)

3 सौन्दर्य का तात्पर्य, पृ. 24-25

इस प्रकार सौन्दर्य की परिभाषा बनाना अत्यंत जटिल है। भारतीय चिन्तक मानते रहे हैं कि सौन्दर्य अनुभूति का विषय है न कि ऐन्द्रियानुभूति का। वे यह भी मानते रहे हैं कि मानवीय सौन्दर्य प्राकृतिक सौन्दर्य से विछिन्न नहीं है। ये मनीषा पिंड और जगत में अभेद दृष्टि का परिचय देती है। यह बात भी स्पष्ट हो चुकी है कि सारी कलाएं शब्दार्थ के छंद से निसृत हैं। किसी भी साहित्य अथवा कला में समवेदना का होना अनिवार्य है। साहित्यिक सर्जन मशीनी उत्पादन से इसलिए भिन्न है कि कवि की मूल्यांकनकारी शक्ति एक लंबी प्रक्रिया से गुज़रती है तथा जीवन-प्रसंग के मार्मिक अंश को ज्ञानसंवेदनाओं व संवेदनाज्ञान से प्रस्तुत करती है। काव्यगत संकेतों में जब तक चेतन धर्म नहीं संचारित होता तब तक प्रगति का संचार भी नहीं हो सकता। काव्यगत प्रभाव में संगीत की सहज गति तभी संभव है जब शब्दालंकार में अर्थ भार कुछ न कुछ बना रहे। अर्थ की वक्रिमता को प्रकट करने वाली सूक्तियां मानवजीवन को गाढ़ भाव से उपलब्ध कराने में सहायक होती हैं। यह भी ज़ाहिर है कि गुण का संक्रमण होता है न कि रूप का। अतः प्रकृति और मानव, शब्दार्थ, मुर्तामुर्त, छंद में अभेद दृष्टि मानी जानी चाहिए। कवि की समवेदना इसीलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि वह जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों से जुड़ी है। अतः अब देखा जाना चाहिए कि शमशेर का सौन्दर्य से क्या आशय है तथा उनकी रचना-प्रक्रिया कैसी है।

अध्याय तीन

शमशेर का सौन्दर्य सम्बन्धी मत

व

सृजन-प्रक्रिया

3. शमशेर का सौन्दर्य सम्बन्धी मत व सृजन-प्रक्रिया

"बात बोलेगी
हम नहीं ।
भेद खोलेगी,
बात ही"[1]

'दूसरा सप्तक' से ही 'बात बोलेगी' पर ज़ोर देने वाला कवि अपने वक्तव्य को किस दिशा में आगे बढ़ाएगा, यह तो उसके सम्पूर्ण रचना-कर्म को देखकर ही कहा जा सकता है। चूँकि प्रश्न सौन्दर्य का है इसलिए शमशेर के सौन्दर्य सम्बन्धी मत को जानने से पहले विजयदेव नारायण साही जी का मंतव्य जानना उचित होगा।'शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट' में श्री साही जी लिखते हैं- "तात्विक रूप में शमशेर की काव्यानुभूति सौन्दर्य की ही अनुभूति है। जिन लोगों का ख्याल है की छायावाद के बाद हिन्दी कविता ने सौन्दर्य का दामन छोड़ दिया है, उन्होंने शायद शमशेर की कविताओं का आस्वादन करने का कष्ट कभी नहीं किया। मैं एक कदम और आगे बढ़कर कहना चाहूँगा कि आज तक हिन्दी में विशुद्ध सौन्दर्य का कवि यदि कोई हुआ है तो वह शमशेर हैं। और इस 'आज तक' में मैं हिन्दी के सब कवियों को शामिल करके कह रहा हूँ।"-बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती, वरन् शमशेर की कविताओं के उद्धरण से जो धारणा साही जी बनाते हैं वह इस प्रकार है- "सच तो यह है कि शमशेर की सारी कविताएँ यदि शीर्षकहीन छपें या उन सबका एक ही शीर्षक हो 'सौन्दर्य' शुद्ध सौन्दर्य, तो कोई अंतर नहीं पड़ेगा। शमशेर ने किसी विषय पर कविताएँ नहीं लिखी हैं। उन्होंने कविताएँ, सिर्फ कविताएँ लिखी हैं, या यों कहें कि एक ही कविता बार-बार लिखी है।"[2]- विजयदेव नारायण शाही जी के उपर्युक्त कथन कितने सही हो सकते हैं यह कवि विष्णु खरे के इस कथन से स्पष्ट होता है। साही जी से अपनी असहमति दर्ज करते हुए विष्णु खरे लिखते हैं- "शमशेर के वक्तव्य के दो अंशों के गलत अथवा विकल पाठ के आधार पर साही ने शमशेर की कविताओं की बनावट और उसके सौन्दर्य के बारे में जो स्थापना की है वह

---

1 दूसरा सप्तक, पृ. 81

2 छटवाँ दशक, पृ. 200,204

दिलचस्प है...जिन्होंने शमशेर की कविताओं को पढ़ा है क्या वे वाकई उन्हें 'सौन्दर्य, शुद्ध सौन्दर्य' के (एक ही) शीर्षक के नीचे रख सकते हैं? क्योंकि(तब यह) बहस-एकदम उठेगी, की अव्वल तो सौन्दर्य मानें क्या और फिर विशुद्ध सौन्दर्य के माने क्या? यदि विशुद्ध सौन्दर्य का अर्थ 'राजनितिक प्रदूषणकारी स्पर्श से मुक्त निजी रागमयता' भी मान लें तो शमशेर की दर्जनों वैसी दूषित कविताओं को अन्य उन्हीं की सुन्दर शुद्ध कविताओं के साथ कैसे रखेंगे? और शमशेर के यहाँ जो कथ्य, शिल्प, बिम्ब और संगीत का मिला-जुला वैविध्य है उसे देखते हुए आप यह कैसे कह देंगे कि शमशेर ने एक ही कविता बार-बार लिखी है? यदि शमशेर की हर कविता पर उनकी एक न एक प्रकार की छाप है, जिसे आप पहचान लेते हैं और आनंदित होते हैं, तो भी वे एक ही कविता तो न हुई।"[1]-कवि विष्णु खरे तथा साही जी के उपर्युक्त कथन संभवतः तब तक स्पष्ट नहीं होंगे जब तक कि हम शमशेर के सौन्दर्य सम्बन्धी विचारों को न जान लें।

'दूसरा सप्तक' के आत्मवक्तव्य में शमशेर लिखते हैं- "हम आप ही अगर अपने दिल और नज़र का दायरा तंग न कर लें तो देखेंगे कि हम सबकी मिली-जुली ज़िंदगी में कला के रूपों का खज़ाना हर जगह बेहिसाब बिखरा चला गया है। सुंदरता का अवतार हमारे सामने पल-छिन होता रहता है। अब यह हम पर है, ख़ास तौर से कवियों पर कि हम अपने सामने और चारों ओर की इस अनंत और अपार लीला को कितना अपने अंदर घुला सकते हैं।"-लेकिन इसके ठीक बाद यह जोड़ना नहीं भूलते कि –"इसका सीधा-सादा मतलब हुआ अपने चारों तरफ की ज़िंदगी में दिलचस्पी लेना, उसको ठीक-ठाक यानी वैज्ञानिक आधार पर(मेरे नज़दीक यह वैज्ञानिक आधार मार्क्सवाद है) समझना और अपने अनुभव को इसी समझ और जानकारी से सुलझा कर स्पष्ट करके, पुष्ट करके अपनी कला-भावना को जगाना।"[2]-स्पष्ट है कि शमशेर का 'सौन्दर्य' या 'सुन्दर' से तात्पर्य कला के रूपों से है। जिसका खजाना उनके आसपास की ज़िंदगी में विखरा पड़ा है। इस लिहाज़ से तत्त्वतः विजयदेव नारायण साही का मत उचित जान पड़ता है। किन्तु शमशेर जिस प्रकार इस नाना रूपात्मक जगत में 'अपार लीला' या 'अनंत लीला' को देखते तथा सुनते हैं, उससे तो यही स्पष्ट होता है कि इस जगत

---

1 http://www.srijangatha.com/? pagename= mulyankan1- Feb 2k7.

2 दूसरा सप्तक, पृ. 80

में एक विश्वव्यापक छन्दोधारा है। क्या वह छन्दोधारा स्थिर है? यदि नहीं तो कविता या कला कैसे स्थिर रह सकती है। इस दृष्टि से कवि विष्णु खरे का मत भी वस्तुतः उचित लगता है। शमशेर के उपर्युक्त वक्तव्य से जो मुख्य बात निकलकर आती है वह है कला। तब सवाल उठता है कि क्या कोई कला रूप बिना वस्तु के रह सकता है? यदि नहीं तो कहा जा सकता है कि शमशेर के यहाँ 'सौन्दर्य' से तात्पर्य 'कला' से है।

यदि माना जाये तो हरेक कवि सौन्दर्य का कवि होता है। कवि की चेतना जैसा कि शमशेर मानते हैं 'पल-छिन' बदलते सौन्दर्य का साक्षात्कार पाने के लिए विकल रहती है। इसीलिए वह ऐसी जगहों पर भी सौन्दर्य के दर्शन को रेखांकित करने और उसे उदघाटित करने में सक्षम हो पाती हैं जहाँ सामान्य दृष्टि उसे देख पाने में विफल रहती है। दरअसल कवि की आँखों में ही एक विशेष प्रकार की सौन्दर्य दृष्टि होती है, जिससे वह किसी वस्तु को ठीक-ठीक समझने और पकड़ने की कोशिश करता है। किन्तु यह प्रयास निरुद्देश्य नहीं होता। उसका कोई न कोई सरोकार अवश्य होता है। प्रकृति ने भी सौन्दर्य की सृष्टि अनिवार्य रूप से किसी न किसी प्रयोजन को ध्यान में रखकर की होगी। ये और बात है कि हम उस प्रयोजन को स्पष्टतः नहीं जानते। किन्तु प्रकृति से भिन्न जो कलाकार सृष्टि करता है उसे हम समझ सकते हैं। तब सौन्दर्य को अधूरे आयाम में देखना किसी आलोचक की दृष्टि हो सकती है किन्तु किसी कवि की नहीं। अतः देखना होगा कि शमशेर कला या कविता का क्या प्रयोजन या उद्देश्य बतलाते हैं। 'कुछ और कविताएँ' की भूमिका में शमशेर लिखते हैं कि- "कवि का कर्म अपनी भावनाओं में, अपनी प्रेरणाओं में, अपने आंतरिक संस्कारों में, समाज-सत्य के मर्म को ढालना उसमें अपने को पाना है, और उस पाने को अपनी पूरी कलात्मक क्षमता से पूरी सच्चाई के साथ व्यक्त करना है, जहाँ तक वह कर सकता हो। मैं जितना महत्व ऐसी अभिव्यक्ति को देता हूँ-कवि के जीने मात्र के लिए जितना महत्वपूर्ण समझता हूँ -उतना उसके प्रकाशन को नहीं।"-स्पष्ट है कि शमशेर कला को प्रकाशन की चीज़ नहीं मानते अपितु अपनी ईमानदार अभिव्यक्ति पर अधिक बल देते हैं। किन्तु यह सच्ची अभिव्यक्ति जिसके बल पर टिकी हुई है, वह है 'समाज-सत्य का मर्म'। अतः देखना होगा कि 'समाज-सत्य का मर्म' आगे के कथन में भी स्पष्ट हुआ है या नहीं? शमशेर लिखते हैं- "फिर भी मैं अपनी प्रेरणाओं को कुछ ऐतिहासिक सत्यों से जोड़ने की, उसके मर्म को अपनी धड़कन के

साथ व्यक्त करने की कोशिश की है...फिर भी मैं दोहरा कर कहना चाहूँगा कि जहाँ तक वह मेरी निजी उपलब्धि है, वहीं तक मैं उन्हें दूसरों के लिए भी मूल्यवान समझता हूँ।"[1] -शमशेर के 'समाज-सत्य का मर्म' तथा 'ऐतिहासिक सत्य के जुड़ाव' को अब और स्पष्ट किया जा सकत है। कह सकते हैं कि कवि शमशेर के लिए कवि कर्म या कला का उद्देश्य 'निजी उपलब्धि' है और उसी शर्त पर दूसरों के लिए भी मूल्यवान है।

'दूसरा सप्तक' के आत्मवक्तव्य में तथा अन्य स्थानों में भी शमशेर बहादुर सिंह अपने को मार्क्सवाद के अधिक नज़दीक पाते हैं। कैसा है शमशेर का मार्क्सवाद या किस रूप में वह उनके नजदीक है? महावीर अग्रवाल से बातचीत करते हुए शमशेर कहते हैं- "मार्क्सवाद को मैं आदमी के इतिहास को समझने की दृष्टि से बहुत ज़रूरी समझता हूँ, पर जब विचारधारा को कविता के स्तर पर लाने की कोशिश करता हूँ तो मेरी ख़ास कोशिश यही रही है कि किसी भी कीमत पर काव्यात्मकता न खोने पाये। मार्क्सवाद से मेरा नज़रिया बेहतर हुआ है। अधिक वैज्ञानिक और अधिक विश्वसनीय भी हुआ। इससे अपनी दृष्टि में विस्तार आता है, साथ ही विश्वबंधुता का अहसास भी होता है। मार्क्सवाद का अध्ययन मैं हर रचनाकार और कलाकार के लिए बहुत ज़रूरी मानता हूँ। उसके बिना रचनाकार को न दिशा मिल सकती है और न उसकी चेतना विकसित हो सकती है। उसके बिना उसमें वेदना आती है पर धार नहीं आ पाती।"- और आगे भी- "बहुत मोटे तौर से, आज मैं किसी विशेष दल या विचारधारा के साथ तो नहीं हूँ, पर मैं अपने को मार्क्सवाद की तरफ खिंचता हुआ पाता हूँ। मार्क्सवाद को मैंने सामजिक, राजनैतिक पहलुओं से नहीं देखता, बल्कि हमारे युग में मानव के गहनतम चिन्तनों से जुड़ा हुआ है। अतः वह मुझे सम्यक रूप से अधिक भौतिक जीवन-संघर्षों का एक अनिवार्य और अनुपेक्षणीय हिस्सा लगता है। एक तरफ तो मार्क्सवाद मानव के अपने संघर्षों को किसी ठोस चिंतन भूमि पर दृढ़ रूप से स्थापित करना चाहता है और स्थापित करने की प्रक्रिया ही उसके जीवन का इतिहास है, दूसरी ओर वह आज के जटिल संघर्षों में कामयाब होने के लिए अदम्य शक्ति का प्रेरक और स्रोत बनकर उसको आंतरिक रूप से बहुत ही ठोस सहारा देता है। इस तरह आज भी कवि के लिए प्रेरणादायक कल्पना के साथ वैज्ञानिक दृष्टि बहुत आवश्यक है। यह ज़रूर है कि मैं उस अर्थ में मार्क्सवादी कभी नहीं रहा जिस अर्थ में मेरे

---

[1] कुछ और कविताएँ, भूमिका से

प्रगतिशील दोस्त, मसलन् शिवदान शिंह चौहान और राजीव सक्सेना हैं। परन्तु मार्क्सवाद मेरी ज़रूरत थी और सच्ची ज़रूरत।"[1]- ज़ाहिर है शमशेर के लिए मार्क्सवाद, विश्वबंधुता के अहसास से, आदमी के इतिहास को समझने की दृष्टि से, मानव के गहनतम चिन्तनों से जुड़ा होने की दृष्टि से, वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान करता है, किन्तु कवि का विशेष ध्यान रहता है कि काव्यात्मकता न खोने पाए। स्पष्ट है कि शमशेर के लिए यहाँ भी अपनी 'निजी उपलब्धि' अधिक महत्वपूर्ण बन जाती है। अतः शमशेर के यहाँ कला का ध्येय सौन्दर्य का अनुसंधान माना जा सकता है।

जिस कवि के लिए 'निजी उपलब्धि' प्रमुख हो उसका यह कहना स्वाभाविक है कि- "कला का संघर्ष समाज के संघर्षों से एकदम कोई अलग चीज़ नहीं हो सकती और इतिहास आज इन संघर्षों का साथ दे रहा है। सभी देशों में, बेशक यहाँ भी, दरअसल आज की कला का असली भेद और गुण उन लोक कलाकारों के पास है, जो जन-आंदोलनों में हिस्सा ले रहे हैं। टूटते हुए मध्यवर्ग के मुझ जैसे कवि उस भेद को पाने की कोशिश में लगे हुए हैं।"[2]- इतनी स्पष्ट स्वीकारोक्ति के बावजूद क्या यह कहा जा सकता है कि शमशेर समाज-संघर्ष को अधिक महत्त्व देते हैं। मध्यवर्ग के कवि का ज़ोर कला-संघर्ष पर है, जो कला का असली भेद व गुण लोक कलाकारों से पाने की कोशिश करता है। शमशेर इस प्रयास में कितना सफल हो पाये हैं, यह तो उनके रचना-कर्म को देखकर ही समझा जा सकता है। शमशेर को काव्य-रूपों का इतना आकर्षण रहा है कि वह भाषा और कला के विविध रूपों पर बल देते हैं साथ ही 'फैले हुए जीवन और उसको झलकाने वाली कला के अंदर सौन्दर्य की पहचान' के लिए, दूसरी भाषाओं के ज्ञान को महत्त्व देते हैं। 'कला का रूप निखारने और सँवारने में 'कलाकार की दिलचस्पियों को स्वीकारते हैं। उनका कहना है कि- "ललित कलाएं काफी एक-दूसरे में समाई हुई हैं। तस्वीर, इमारत, मूर्ति, नाच, गाना और कविता, इन सबमें, बहुत हद तक एक ही बात अपने-अपने ढंग से खोलकर या छिपकर या कुछ खोलकर या कुछ छिपाकर कही जाती है। मगर इनके ये अलग-अलग ढंग दरअसल एक दूसरे से ऐसे

---

1 समकालीन भारतीय साहित्य(जनवरी-मार्च 1993), पृ. 64

2 दूसरा सप्तक, पृ. 77

अलग-अलग नहीं है, जैसे कि ऊपरी तौर से लगते हैं।"[1] -इससे जो बात ज़ाहिर होता है वह यह कि कविता में विभिन्न कलाओं का योग होता है। कहा जा सकता है कि ललित कलाओं का अध्ययन सम्यक रूप से होना चाहिए। शमशेर के उपर्युक्त कथनों से यह भी सपस्ष्ट होता है कि सौन्दर्य से, कला से, कविता से उनका क्या आशय रहा है तथा उसका उद्देश्य क्या है। कलाकृति और सामजिक जीवन के अन्त:सम्बन्ध तथा निजता व सामाजिकता के अंत:संबंध आदि पर शमशेर के विचार कैसे हैं। वैयक्तिक तथा सामूहिक जीवन में कला का क्या स्थान है एवं कला से विचारधारा का कैसा सम्बन्ध होना चाहिए-इन विषयों पर भी उनकी राय जान चुके हैं। अत: उनकी रचना-प्रक्रिया को जानना आवश्यक होगा।

शमशेर अपनी रचना-प्रक्रिया के बारे में डॉ. रंजना अरगड़े से कहते हैं- "तो...कविता मेरे सामने एक 'फ्लैश' की तरह आती है। एकदम 'फोर्स' के साथ। और अगर दो मिनट के लिए भी मैं चूक जाता हूँ, तो...its gone, gone for good, just gone for good...फिर वह कभी आती ही नहीं। जैसे बिजली होती है न! बस, पूरे force के साथ चमकती है। उसमें गर्जन भी होता है, पर बस क्षणिक ही। बाद में कुछ नहीं।"...मेरी अधिकतर कविताएँ अपनी भाषा के साथ, शब्दों के निश्चित क्रम के साथ आती है। अगर वह समय निकल गया, वह क्रम भी अगर गड़बड़ा गया तो the poem has lost its meaning कविता पूरी की पूरी शब्द के रूप के साथ आती है। मैं उसे तुरंत कागज़ पर उतारना ज़रूरी समझता हूँ।"[2]-शमशेर जिस 'फ्लैश' के साथ आंतरिक 'फोर्स' की बात कर रहे हैं। उससे इतना तो स्पष्ट है कि वह 'फोर्स' शब्दों के निश्चित क्रम के साथ तथा रूप के साथ आता है। लेकिन यह सिक्के का एक पहलू है। दरअसल शमशेर की रचना-प्रक्रिया एक प्रकार की नहीं है। शमशेर के काव्य की रचना-प्रक्रिया प्रदीर्घ नहीं होती वरन् 'फोर्स' के समय ही वह अपनी रूपगत भाषा को तैयार कर लेती है। लेकिन जैसा कि नरेंद्र वशिष्ठ ने लिखा है- "लेकिन काव्य रचना-प्रक्रिया के प्रदीर्घ न होने से यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि शमशेर की कविता में नाटकीय तत्व या मूवमेंट नहीं होता। उनकी जटिल मानसिकता से छनकर आती हुई अनुभूति अनिवार्यत: संश्लिष्ट और नाटकीय बन जाती है। शमशेर की

---

1 दूसरा सप्तक, पृ. 79

2 कवियों का कवि शमशेर, पृ. 205

कविताओं की यही विशेषता है कि वे छोटी और लिरिकल होते हुए भी भरपूर नाटकीयता से संपृक्त होती हैं साथ ही वे क्लासिक तटस्थता का स्पर्श भी लिए होती है जो शमशेर के कवि-व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन गई है।"[1]- इस प्रकार शमशेर की कविता की रचना-प्रक्रिया की विशेषता संश्लिष्ट व नाटकीय मानी जा सकती है। उनकी छोटी कविताओं में नाटकीयता व लिरिक के गुण पाये जाते हैं।

शमशेर की कविता का ड्राफ्ट भी प्रायः एक नहीं होता। रंजना जी से बातचीत के क्रम में वह कहते हैं- "प्रायः दूसरा ड्राफ्ट नहीं बनता। पर हाँ कुछ कविताएँ ऐसी हैं, जिनके बहुत सारे ड्राफ्ट बनाये हैं। यह ज़रूरी नहीं की पहला ड्राफ्ट अन्तिम ही हो, पर कई बार अनेक ड्राफ्ट बनाकर भी मूल तो पहला ही रहता है। Basic रहता है। I work consciously on the poem."...नहीं तो यह भी होता है कि मान लीजिए मैं बहुत थका हुआ लेटा हूँ, और मेरे सामने कोई फ्लैश आता है...उस समय अगर अपने आपको उठाकर वह लिखने के लिए तैयार किया, तब तो कविता आ गयी समझो, वरना वह गयी और कभी नहीं आयी। और यह सारी बात कुछ मिनटों में होती हैं।"[2]- इसीलिए 'चीन देश का नाम' कविता लिखने में उन्हें करीबन साल-डेढ़ साल लग गये। 'मणिपुरी काव्य-साहित्य पर एक विहंगम नन्हीं सी झांकी' कविता में भी उन्हें कई ड्राफ्ट बनाने पड़े। 'आओ' कविता की गीतात्मक पंक्तियों को पूरा करने में शमशेर को महीनों लगे। संस्कृतनिष्ट समासीय शैली में लिखी 'सुर्य अपोलो स्तुति में' भी रचना-प्रक्रिया लंबी है। कुल मिलाकर शमशेर की सृजन-प्रकिया छोटी ही नहीं होती वरन कई बार वह दीर्घ भी होती है।

कला सृजन-प्रक्रिया के और भी रूप सामने आ सकते हैं यदि हम शमशेर की इन बातों को मानें-"प्रेम की पाती' कविता भी ऐसी ही है, जिसमें मुझे समय लगा। मुझे experiments करने का बहुत शौक है। 'संध्या' तथा 'प्रेम की पाती' में मैंने छंद प्रयोग किये हैं 'प्रेम की पाती' में 'पंक्ति' छंद है, जहाँ तक मुझे याद है, और 'संध्या' में 'विद्युल्लता' है।...मैंने इन पुराने छंदों के जीवित रूप को रखना चाहा है।...जीवित रूप से मेरा मतलब है, छंद का जो

---

1 शमशेर की कविता, पृ. 28

2 कवियों का कवि शमशेर, पृ. 206-207

संस्कृत में निश्चित रूप है वह नहीं, पर वैसा जिससे उसकी रूप एवं अर्थ की संभावनाएँ ज्यादा खुले।"[1]- परम्परित छंद के अतिरिक्त शमशेर आवयविक छंद की बात स्वीकारते हैं। उनकी कुछ कविताएँ ऐसी भी हैं जो उनकी डायरी का अंश मानी जा सकती हैं। मसलन 'टूटी हुई, बिखरी हुई'। इस प्रकार की कविता में शमशेर की सृजन-प्रक्रिया भाषा के स्तर पर गद्य की हो जाती है। 'दो मोती के चन्द्रमा होते' पर शमशेर कहते हैं- "मैंने आपसे बात की थी न कि मेरी कविताएँ प्रायः फ्लैश के साथ आती हैं। यह कविता भी ऐसे ही आयी थी-अपनी dramatical, lyrical quality के साथ। यह कविता मैंने बहुत पहले लिखी थी। शायद उस समय ऐसी चीज़ बहुत कम लिखी जाती थी।"[2]-स्पष्ट है कि शमशेर का लिखने का ढंग कई प्रकार का रहा है।

शमशेर की रचना-प्रक्रिया का एक प्रकार वह भी है जिसमें शमशेर का चित्रकार उनके कवि के सहायक के तौर पर काम करता है। मुक्तिबोध ने इसी को ध्यान में रखते हुए 'शमशेर : मेरी दृष्टि में' कहा था- "शमशेर ने अपने हृदय में आसीन चित्रकर को पदच्युत कर कवि को अधिष्ठित किया है। इससे एक बात यह हुई कि कवि का कार्यक्षेत्र(स्कोप) बढ़ गया है। इम्प्रेशनिस्टिक ढंग का चित्रकार जीवन की उलझी हुई स्थितियों का चित्रण नहीं कर सकता- वह उसके किसी दृश्य-खण्ड को ही प्रस्तुत कर सकता है। उस विचित्र दृश्य खण्ड में भी, वह दृश्य के सूक्ष्म पक्षों को प्रस्तुत नहीं कर सकता। किन्तु कवि वैसा कर सकता है। ...संक्षेप में, इम्प्रेशनिस्टिक कला ने शमशेर से त्याग करवाया है, साथ ही उन्हें बहुत कुछ मौलिक और विशिष्ट गुण दिए हैं, जो किसी अन्य कवि में नहीं पाये जाते।...कभी-कभी पदच्युत चित्रकार के सिहांसन और उस पर विराजमान कवि में झगड़ा हो जाता है। कवि चाहने लगता है कि सिंहासन के चंगुल से छूटकर स्वतंत्र जीवन व्यतीत करे, और तब शमशेर, एकदम कुलाट खाकर, क्लासिकल पूर्णता की तरफ अग्रसर होते हैं और बहुत बार वे सफल होते से नज़र आते हैं। उनकी 'शान्ति' कविता इसका एक अत्यंत महत्वपूर्ण और सफल उदाहरण है।"[3]

---

1 कवियों का कवि शमशेर, पृ. 210

2 कवियों का कवि शमशेर, पृ. 212

3 समकालीन हिन्दी आलोचना, पृ. 86-87

ज़ाहिर है कि जहाँ शमशेर का कवि हावी होता है वहाँ उनकी रचना-प्रक्रिया भिन्न होती है। जैसे-घनीभूत पीड़ा, एक मौन, सींग और नाख़ून, शंख-पंख आदि। दूसरी तरफ शमशेर का चित्रकार जब कवि पर हावी होता है तो रचना-प्रक्रिया भिन्न हो जाती है। जैसे- 'अमन का राग', 'पूरा का पूरा आसमान' आदि।

इस प्रकार शमशेर की सृजन-प्रक्रिया में दिलचस्प भिन्नता है। राजेश जोशी के हवाले से शमशेर एक जगह लिखते हैं- "अब मैं अपनी रचना-प्रक्रिया पर आता हूँ। तो इसलिए ये अज़र करना पड़ता है मुझको कि लिखने का ढंग मेरा कई तरह का है और इसमें(आमतौर पर) मुख्य ये है कि- वास्तव में आपको सच बताता हूँ कि पहली पंक्ति लिखने तक शायद मुझे इसका आभास भी नहीं होता कि मैं कोई कविता लिखने जा रहा हूँ। यह तो ज़रूर है कि एक महीने, दो महीने, तीन महीने या कुछ अरसे तक तबियत में बेचैनी-सी रहती है। क्यों रहती है? क्या रहती है? किसी ख़ास कविता की कोई रूपरेखा नहीं रहती उसमें। कुछ समस्याएँ रहती हैं, कुछ उलझने रहती हैं, कुछ बाते रहती हैं- बहुत सी बातें, कुछ लोग याद आते रहते हैं या कुछ समस्याएँ जो सामने रहती हैं वो कचोटती रहती हैं। उनको मैं रखना चाहता हूँ, लिखना चाहता हूँ, लिख नहीं सकता हूँ। कई बातें इस तरह की-तरह तरह की बातें रहती हैं, एक तरह की थोड़े ही। तो ऐसा होता है कि यकबयक एक इमेज जैसे कोई चीज़ आ जाती है और वो...यानी वो अपने शब्द लिए हुए आती है। और मैं फौरन उसको लिख लेता हूँ क्योंकि वो एक-आंतरिक फोर्स, एक मजबूरी जो मुझे बाँध लेती है वो हाथ पकड़कर जैसे आयद हो मुझसे लिखवाती है। उसके लिखने से मुझे एक रिलीफ मिलता है- एक सांत्वना सी-कहिए, एक हल्कापन महसूस होता है। और उसके बाद क्रम शुरू होता है- आगे क्या आयेगा, मुझे नहीं मालुम। उसका छंद क्या होगा या निश्चित करके मैं नहीं लिखता। वो अपनी रौ में आयेगा। रौ में। जैसे आंधी आती है तो अपने रौ में आती है। हर आँधी एक ही रौ में, एक ही तेज़ी से नहीं आती-कोई कम, कोई ज़्यादा, कोई ज़ोर-शोर के साथ। कोई आयी और निकल गई, कोई देर तक। वगैरा। इसी तरह से ये कविताएँ भी उसी तरह से छंद बनाती हुई चली आती हैं।"[1]- यह लंबा उद्धरण भी पूर्वोक्त बातों की पुष्टि करता है।

---

[1] नया-पथ, (जनवरी-मार्च 2010), 'जी को लगता है बात खरी है शायद' राजेश जोशी

इस प्रकार शमशेर के यहाँ सौन्दर्य से आशय कला है। कला के बिखरे हुए खजाने उन्हें मोहित करते हैं। वह उपयोगी कला से इतर, मानते हैं कि कला प्रकाशन की चीज़ नहीं। इसलिए शमशेर कला की निजी उपलब्धि पर अधिक बल देते हैं साथ ही समाज-सत्य के मर्म को ग्रहण करने की बात भी कहते हैं। उनका मानना है कि रोजमर्रा के फैले हुए जीवन और उसको झलकने वाली कला के अंदर सौन्दर्य की पहचान होनी चाहिए। क्योंकि सभी कलाएं एक-दूसरे में समाई हुई हैं। भाषाओं व ललित कलाओं के रूपों की विविधता सम्बन्धी मत को भी लक्ष्य किया जा सकता है। शमशेर की रचना-प्रक्रिया की विविधता को ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि उनमें एक नहीं बल्की कई ग्राफ बनते है। उनकी रचना-प्रक्रिया का एक अंदाज़ वह भी है जिसमें अल्पावधि में ही फोर्स के साथ ज़्यादातर कविताएँ बन जाती हैं। दूसरा अंदाज़ दीर्घावधि में प्राप्त की गयी कविताएँ हैं। तीसरा वह है जो डायरी लेखन से प्राप्त होता है। चौथा वह है जिसमें कवि चित्रकार पर हावी हो जाता है। ज़ाहिर है शमशेर की सृजन-प्रक्रिया में इतनी विविधता है कि अन्य कवियों में यह विविधता मिलना मुश्किल है। शमशेर की सृजन-प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए उनके सौन्दर्य सम्बन्धी मतों की पुष्टि के लिए उनकी कविता या कला का विवेचन उचित होगा। अतः पहले 'कला' के वस्तु-पक्ष को देखा जाना चाहिए।

अध्याय चार
शमशेर की कविता
का
वस्तु-विन्यास

4. शमशेर की कविता का वस्तु-विन्यास

"हर घर में सुख
शांति का युग
हर छोटा-बड़ा हर नया पुराना हर आज-कल परसों के
आगे और पीछे का युग
शांति की स्निग्ध कला में डूबा हुआ
क्योंकि इसी कला का नाम जीवन की भरी-पूरी गति है ।"[1]

कवि शमशेर का यह राग व्यापक अर्थों में हिंसा में शांति का राग है। इस राग को समझने के लिए आवश्यक है कि शमशेर की कविता के दो खण्ड सुविधा के लिए बना लिए जायें। पहला खण्ड वस्तु-विन्यास का तथा द्वितीय खण्ड रूप-विन्यास का। इसलिए जानना हितकर होगा कि कविता या कला में वस्तु की या रूप की क्या स्थिति होती है। किसी भी कृति में वस्तु का उतना ही महत्व होता है जितना विषय का। इसलिए शिवकुमार मिश्र जी लिखते हैं- "नए विषय नए वस्तु-तत्त्व को सामने लाते हैं और तदुपरांत नया रूप सामने आता है। किन्तु कभी-कभी पुराने विषयों या रूपों में भी नया वस्तु-तत्त्व अभिव्यक्त होता है, परन्तु वह पुराने रूपों को एकदम नष्ट भी कर सकता है और फलस्वरूप नए रूप के उद्भव के लिए रास्ता साफ करता है। समाज व्यवस्थाओं के बदलने के साथ-साथ नए वस्तु-तत्त्व और नए रूप-तत्त्व का उद्भव होता है। कुल मिलाकर बात इतनी ही है कि कला तथा साहित्य के अंतर्गत वस्तु-तत्त्व की समस्या बहुत आसान नहीं है। वस्तु-तत्त्व के समुचित अध्ययन के लिए समाज-व्यवस्थाओं और सामजिक स्थितियों में क्रमशः होने वाले परिवर्तन का अध्ययन भी आवश्यक है। ....कृति को स्थायित्व बहुत कुछ इस नव्यता एवं मौलिकता पर निर्भर करता है।"[2] - और मौलिकता के सम्बन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी साफ-साफ कहते हैं- "परम्परा के प्रति या समाज के विकासमान व्यक्तितत्व के प्रति विद्रोह ही मौलिकता नहीं है और परम्परागत विषय-वस्तु का विन्यास मौलिकता का विरोधी भी नहीं है। लेखक का वही व्यक्तित्व सच्ची मौलिकता का अधिकारी हो सकता है जो सामाजिक मंगल के प्रतिकूल न

---

1 बात बोलेगी, अमन का राग, पृ. 79

2 मार्क्सवादी साहित्य चिंतन :इतिहास तथा सिद्धांत, पृ. 391-92.

हो।...इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर कविवर रविन्द्रनाथ ठाकुर ने बँगला में 'ओरिजनेलिटी' के तौल पर चलने वाले मौलिकता के लिए 'स्वकीयता' शब्द चलाया था। मौलिकता सामंजस्यविधायिनी दृष्टि की स्वकीयता है। उसमें विद्रोह उन असामाजिक तत्त्वों के प्रति होता है जो मानव-समाज के विकास के प्रतिकूल जाते हैं... ।"[1]- अतः भारतीय मनीषा की बात से लगता है कि वस्तु-तत्व का सम्बन्ध नए-पुराने विषय से, रूपमय विषय से, नवीन मौलिकता से, मौलिक नवीनता से उतना ही रहा है, जितना कि रूप-तत्त्व से। ज़ाहिर है सामाजिक-राजनीतिक उतार-चढ़ाव को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता।

'मुज़फ्फ़र नगरी' शमशेर बहादुर सिंह का घर कविता है। जिसमें वह लगातार चहल-कदमी करते रहते हैं। शमशेर जब कविता रूपी घर में मौजूद हों तो देहरादून-इलाहाबाद-दिल्ली-मुंबई-सागर-अहमदाबाद आदि की परिक्रमा लगाना घर से बाहर जाना होना, जो शायद कवि को संभवतः मंज़ूर न हो। अतः उनके घर अर्थात कविता से ही बात शुरू की जाये तो बेहतर रहेगा। कविता का शीर्षक है 'ओ मेरे घर'-

"*ओ मेरे घर*
ओ हे मेरी पृथ्वी
साँस के एवज़ तूने क्या दिया मुझे
-ओ मेरी माँ?"[2]

घर से, माँ से किया गया यह सवाल जिजीविषा मूलक है, जो प्रत्येक मनुष्य के अस्तित्व से जुड़ा हुआ है। प्रतीक्षारत उत्तर धीरे-धीरे आगे बढ़ता है-

"*तूने युद्ध ही मुझे दिया*
प्रेम ही मुझे दिया, क्रूरतम कटुतम
और क्या दिया
मुझे भगवानद दिए कई-कई
मुझसे भी निरीह मुझसे भी निरीह!
और अद्भुत शक्तिशाली मकीनीकी प्रतिमाएँ!"[3]

---

1 हजारी प्रसाद द्विवेदी, संचयिता, पृ. 168

2 इतने पास अपने, ओ मेरे घर, पृ. 19

3 इतने पास अपने, ओ मेरे घर, पृ. 19

यह त्रासदी है आधुनिक मानव की, जिसे युद्ध, कटु-क्रूर प्रेम, निरीह भगवान तथा शक्तिशाली मशीनें मिलती हैं। और मिली है ऐसी ज़िंदगी-

"ऐसी मुझे ज़िंदगी दी
ओह
आँखें दीं जो गीली मिट्टी का बुदबुद-सी हैं
और तारे दिए मुझे अनगिनती
साँसों की तरह
अनगिनती इकाइयों में
मुझसे लगातार दूर जाते
मौन की व्यर्थ प्रतीक्षाओं-से!"[1]

इस जगत में मनुष्य के अस्तित्व की विकलता और भी गहरा जाती है-

"और दी मुझे एक लंबे नाटक की
हँसी
फैली हुई दर्शकशाला के इस छोर से उस छोर तक
लहराती कटु-क्रूर"[2]

कितनी बेचैन करती है यह कटु-क्रूर हँसी, इस विस्तृत संसार में। किन्तु जब विडंबनाबद्ध मनुष्य अपनी प्यारी पृथ्वी से, माँ से तथा घर से उम्मीदें लगाये बैठा हो तो दर्शकशाला में लहराती कटु-क्रूर हँसी को देखना-सुनना बेहतर होगा। 1933 में 'नव कवि का आह्वान' है-

"पागल कवि शिशु, केलि-विभोर
कूद-कूद कर द्वंद्व मचाता
सब देवों को मुकुर दिखाता
यह अनंत चिर-विस्मय में खो जाता ।"[3]

छायावादी पुट के साथ पागल कवि शिशु जैसी उछल-कूद मचाता है। जीवन और जगत के प्रति जो हल्का-सा आकर्षण दिखाई पड़ता है, वह तब और उदघाटित होता है जब कवि लिखता है-

---

1 इतने पास अपने, ओ मेरे घर, पृ. 19

2 इतने पास अपने, ओ मेरे घर, पृ. 20

3 उदिता, नव कवि का आह्वान, पृ. 24

"आह,प्रेम घन!
वह आनंद नहीं है
जोगी हो जाने में
जो कुछ खोकर पा जाने में
अपने अंदर ही है ।"[1]

अपने अंदर ही पाने की ललक कवि में नया उत्साह जगाती है। इस पूरी कविता में जो ध्यान योग्य है; वह है वस्तु-जगत के प्रति थोड़ा-सा आकर्षण। नए-नए बादलों को देखकर जो उत्साह कवि के अंदर है उसी के चलते वह उस अन्तःद्वार को खोलने का आह्वान करता है, जिसमें युगों का 'धुआँधार पावस' घुटा हुआ है और 'व्योम-व्योम के वक्ष' टूट पड़ने को बेताब हैं। यह एक ऐसी दुनिया है जिसमें सृष्टि-सृष्टि का वैभव बरस रहा है। इस कविता की विशिष्टता नए बादलों के रस से भीगती दुनिया के उस कोने से है जहां –

"वह कोना खाली है,देखो-देखो ।
सर पर हैं स्मृतियों के दल के दल ।"[2]

यद्यपि इस कविता में छायावादी शब्दों की बहुलता स्पष्ट देखी जा सकती है किन्तु जो देखने योग्य है वह है-एक नयापन। 'स्मृतियों के दल के दल' कितना और जगाते हैं यह 1934 में प्रकाशित 'सजल स्नेह का भूषण केवल' कविता में देखा जा सकता है-

"सहसा आ सम्मुख चुपचाप
संध्या की प्रतिमा-सी मौन
करती है प्रेमालाप
प्रेयसी नहीं, परिचिता-सी वह कौन?"[3]

कवि का यह रहस्यलोक पाठकों के लिए अपरिचित-सा लगता है। कविता का अंतिम बंद है-

"मरे अंतर में भर जाती

---

1 उदिता, नव कवि का आह्वान, पृ. 23

2 उदिता, नव कवि का आह्वान, पृ. 23

3 उदिता, सजल स्नेह का भूषण केवल, पृ. 30

केवल अपना करुणा-राग :

वह आजान सुलगाती
क्यों नव यौवन में अबोध वैराग?"[1]

इस पहेली के सुलझ जाने से स्पष्ट होता है कि कवि जिस परिचिता की बात कर रहा है वह है और कोई नहीं अपितु मृत्यु रूपी सुन्दरी है, जो नवयौवन में भी वैराग के लिए उकसाती है। कवि की बेचैनी इस 'अजान' में दब गई है और बचा है मात्र छायावादी परिपाटी का निर्वाह।

शमशेर की 1937 से 1947 तक की रचनाओं का मिजाज़ जानने के लिए उदिता काव्य-संग्रह की भूमिका संभवतः सहायक हो सकती है, किन्तु पहले कला के फूल रूपी कवि की बात को समझ लिए जाये। 1937 में प्रकाशित 'कवि कला का फूल हूँ मैं' शीर्षक कविता का यह बंद-

"*क्षार का उन्मत्त वैभव*
लाल कर आशा लहू से
एक स्वर-करताल-ज्वाला से
हृदय को फूँकता हूँ
सांध्य-जीवन के ज्वलित कंदील-उर की तूल हूँ मैं ।"[2]

कवि जानता है कि जीवन संघर्षों से भरा हुआ है। अतः उसने भी उम्मीदों को नहीं छोड़ा। 'हृदय को फूँकता हूँ' में निराला का प्रभाव भी लक्षित किया जा सकता है। इसी प्रकार 1939 में प्रकाशित 'वाणी' शीर्षक कविता की निम्न पंक्तियाँ-

"*कर्म कठोर बनेगा मन*
बरसेगा घिर कर गुरुघन
विहर-विहर कर वन-वन पानी
वन-वन देश घिरकर
घन बरसायेगा पानी ।"[3]

---

1 उदिता, सजल स्नेह का भूषण केवल, पृ. 30

2 उदिता, कवि कला का फूल हूँ मैं, पृ. 19

3 उदिता, वाणी, पृ. 27

इन दोनों कविताओं से कवि की आशा-निराशाओं का पता तो चलता है, लेकिन उसका ख़ास अंदाज़ क्या है? यह स्पष्ट नहीं होता। ऐसी ही कविताओं को देखकर संभवतः कमला प्रसाद जी ने लिखा होगा- "इन कविताओं में कवि जो कुछ कहता है उनमें या तो विभिन्न मानसिक स्थितियों के संकेत हैं, दिल के उदगार हैं, करुणा की अभिव्यक्ति है, आत्मालाप है, या प्रेम प्रसंग हैं।"[1] – बावजूद इसके कवि की आशा-निराशायें ही कविता को आगे बढ़ाएंगी। कवि कला का फूल को तथा नव कवि के आह्वान को आगे की कविताओं में देखना होगा।

शमशेर की 1937 से 1947 तक की रचनाओं का मिजाज़ जानने के लिए उदिता की यह भूमिका संभवतः सहायक होगी- "अगर मेरी वाणी में इंसान का दर्द है-छोटा-सा ही दर्द सही, मगर सच्चा दर्द...भावुकता, ललक, आकांक्षा, तड़प और आशा, कभी घोर रूप से निराशा भी लिए हुए, कभी उदासी, कभी-कभी उल्लास भी, एक प्रेमी कवि कलाकार, एक मध्यवर्गीय भावुक नागरिक का, जो मार्क्सवाद से रौशनी भी ले रहा है और सांस्कृतिक और धार्मिक विविध परम्पराओं में अपनी नैसर्गिक शक्ति और ऊर्जा के स्रोत भी(अपनी सीमा में, अपनी शक्ति भर) तलाश कर रहा है; एक ऐसा व्यक्ति जिसको सभी दीनों और सभी धर्मों से और सभी भाषाओं और साहित्य से प्यार है तथा सबसे अपने दिल को जोड़ता है।"[2] – कवि के इन शब्दों में 1937 तक की रचनाओं का केन्द्र तो छिपा ही है, संभवतः आगे की कविताओं के बीज भी इनमें मिल जायें। 1937 में प्रकाशित 'स्थिर है शव-सी वात' को हिन्दी में पुनः प्रवेश के रूप में देखा जाये तो ज़ाहिर होगा कि शमशेर का स्वर 1936 के बाद कैसे बदला-

"स्थिर है शव सी वात ।
लटका है पश्चिम के घर में
आधा चाँद कटोरा काँसे का-सा ।
सीसे की-सी नीली रात ।"[3]

---

1 कविता तीरे, पृ. 112

2 उदिता, भूमिका से

3 उदिता, स्थिर है शव-सी वात, पृ. 39

यहाँ उस उदास रात का वर्णन है जिसमें हवा बिलकुल स्थिर है। आसमान में चाँद भी लटका हुआ-सा है और नीली रात सीसे की तरह भारी है। गति का अभाव और सीसे का भारीपन, चाँद में कोई चमक भी नहीं है। नीली पृष्ठभूमि में काँसे का रंग कोई हलचल नहीं उठाता। इस रात में पेड़ ऐसे स्थिर हैं, मानो ठिठुर गए हों। कहीं उल्लास का कोई कारण नहीं। रात की यह भयानक स्थिरता होंठ को भी सुखा देती है। वह गतिहीन ही नहीं बल्कि ऊष्मा से भी रहित है। उदासी और निराशा का यह आलम और भी गहरा जाता है-

"नत जीवन का भाल ।
प्रेम पड़ा है ठंडा मानव-उर का ।
निद्रा तम के शून्य शिविर में
अंधा पंगु बंधा है काल ।"[1]

जब नत जीवन का भाल झुक गया हो तो निराशा का भाव अति सघन होना स्वाभाविक ही है। मृत्यु का यह सघन बोध जीवन की रिक्तता से उत्पन्न हुआ है। कवि के जीवन में कोई हलचल नहीं रह गई है।

जीवन के प्रति गहरी निराशा का भाव शमशेर की कविताओं में अवश्य हैं किन्तु वह इतना भिन्न है कि अलग से पहचाना जा सकता है। 'नत जीवन का भाल' तो 1937 में ही झुक गया था किन्तु उससे उपजी निराशा कितनी गहरी हो सकती है और कितने भयावह तरीके से जीवन पर असर कर सकती है यह 1938 में प्रकाशित 'मृत्यु का प्रस्तर-खण्ड' शीर्षक कविता पढ़कर समझा जा सकता है-

"एक बुझा काला विशाल मार्तण्ड
कितना मौन युगों से डूब रहा हूँ महाशून्य में ।"[2]

महाशून्य में स्थिर-सा हो जाने का आभास सूरज का है या स्वयं कवि का है जो न डूबता है और न ही उगता है। सूरज के डूब जाने की कल्पना मात्र से कवि का मन काँप उठता है। तभी तो वह अपनी कल्पना एक बहुत बड़े काले सूरज के रूप में करता है, जो बुझ चुका है। विशालता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि वह(सूरज) अपनी जगह छोड़कर नीचे गिर पड़ा है। 'मार्तण्ड' का प्रयोग एक विशेष प्रकार की थर्राहट तो उत्पन्न करता ही

---

1 उदिता, स्थिर है शव-सी वात, पृ. 39

2 उदिता, मृत्यु का प्रस्तर खण्ड, पृ. 48

है, निराशा के इस भाव को भी अत्यंत उदात्त स्तर पर प्रतिष्ठित कर देता है। तभी तो अपूर्वानंद का कहना है कि- "जीवन का अभाव कुछ इस कदर मन को पीस रहा है, जैसे कवि स्वयं 'मृत्यु का प्रस्तर-खण्ड' हो गया हो। यहाँ भी 'स्थिर है शव सी वात' कविता की तरह ही कहीं कोई गर्मी नहीं है, उष्मा का स्रोत, सूर्य बुझ चूका है! हरकत दिलाने के लिए यहाँ गरमी नहीं ठण्ड है; 'चेतन करने को अंतर में जग उठती-सी कुछ ठण्ड'। पूरा वातावरण सर्द है और 'प्रस्तर खण्ड' और मार्तण्ड की उपस्थिति के कारण भारी भी। यहाँ मृत्यु को लेकर कोई संगीत नहीं रचा गया है, न ही मन के विषाद पर रहस्य का पर्दा डालकर उसे आकर्षक बनाने की कोशिश है। यह निराशा बहुत गहराई में, शमशेर की अपनी एकांतिक अनुभूति है, जो कविताओं की भीड़ में भी अपने ख़ास इशारों से अपनी पहचान बना लेती है।"[1] - स्पष्ट है।

मृत्यु की समीपता को, जीवन की विडंबना को जितनी गहराई से शमशेर महसूस करते हैं उतना संभवतः अन्य कवि नहीं। शायद इसीलिए नामवर सिंह को लिखना पड़ा होगा- "मृत्यु का साक्षात्कार शमशेर को जैसे शुरू में ही हो गया था। 'स्थिर है शव सी वात' कविता सन् 1937 की है, जिसकी वात आज भी सिहरन पैदा करती है, तब की हिन्दी कविता में तो अनूठी थी ही। यह अस्तित्ववादी 'मृत्युबोध' नहीं है और ना ही 'मरण सुन्दर बन आय री' की रोमांटिक कल्पना! शमशेर के लिए मृत्यु ख्याल नहीं हक़ीकत है। प्रेम की तीव्र अनुभूति के क्षण में भी साक्षात उपस्थिति।"[2]

कवि शमशेर की मानवीय करुणा का दायरा बहुत विस्तृत है। वह प्रत्येक व्यक्ति से प्यार करते हैं और प्रत्येक व्यक्ति को अपने में पाते हैं। इसीलिए जब उनका कोई मित्र या समशील साहित्यकार स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर जाता है तो शमशेर के गम का खजाना बिखर पड़ता है। 'का. रूद्रदत्त भारद्वाज की शहादत की पहली वर्षी पर' शमशेर के भाव देखे जा सकते हैं-

"*वह हँसी के फूल-*

---

1 सुन्दर का स्वप्न, पृ. 206

2 प्रतिनिधि कविताएँ, भूमिका से

उषा का हृदय
बस गया है याद में: मानो
अहिर्निश्
साँस में एक सूर्योदय हो!"[1]

मित्र की यह याद सुलाने वाली नहीं है बल्कि कवि के लिए वह साँस में एक सूर्योदय की तरह है। जो मार्क्सवादी मित्र शमशेर के जीवन में उत्साह जगाने वाला हो उसकी पहचान भी अलग होनी चाहिए-

"*धूल में है तीन रंग*
गड़ा जिस पर मौन भारद्वाज का है-लाल निशान ।"[2]

धूल में मिले तीन रंगों को सजाने-सँवारने का जो काम का॰ रूद्रदत्त ने किया था उसकी याद आना स्वाभाविक है। इसी प्रकार 'शहीद का. नागेन्द्र सकलानी के प्रति' भी कृतज्ञता से भरा हुआ है। उसके स्वभाव आदि को रेखांकित करते हुए कवि उसके उद्देश्य को यों चित्रित करता है-

"*एक सपना था सजीव*
मार्क्सवादी देश का तू! एक तारा था
भविष्यत लोक-युग का ।"[3]

शमशेर ने जितने भी शोकगीत लिखे हैं, अपने ख़ास अंदाज़ में लिखें हैं। उन्हें किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का कोई विशेष पहलू आकर्षित करता है और वो उसे चित्रित कर देते हैं। चित्रण करने की यह जो विधि है वह अद्वितीय है। काज़ी नज़रुल इस्लाम के निधन पर शमशेर ने जो कविता लिखी थी उसका एक चित्र देखिये। शीर्षक है 'आकाशे दामामा बाजे..."

"*गर्दन झुकाये*
एकटक कुछ देखते, सोचते,
निश्चल
ओ विद्रोही
-क्या देखते, जाने क्या सोचते

---

1 बात बोलेगी, का. रुद्रदत्त भारद्वाज की शहादत की पहली वर्षी पर, पृ. 66

2 बात बोलेगी, का. रुद्रदत्त भारद्वाज की शहादत की पहली वर्षी पर, पृ. 66

3 बात बोलेगी, शहीद का. नागेन्द्र सकलानी के प्रति, पृ. 69

स्वतः अनजाने ही
तीन देशों के एक साथ नागरिक
तीन देशों की विप्लवी
एकता में
कहीं
चित्त बसाये
...हमारे लिए तीन
जो तुम्हारे लिए एक...."[1]

कवि ने काज़ी नज़रुल इस्लाम को विद्रोही कवि के रूप में चिन्हित किया है तथा उनकी अदा को भी रेखांकित किया है। दरअसल शमशेर के लिए 'मौत कोई सेंटिमेंट की चीज़ नहीं' वह एक ठोस हस्ती है व्यक्ति के लिए, हर व्यक्ति के लिए'। आत्मीय मित्र मोहन राकेश की अकाल मृत्यु से कवि को गहरा आघात पहुँचता है। वह 'मोहन राकेश के साथ एक तटस्थ बातचीत' में लिखता है-

"*तुम उस लोक में हो*
जिसकी परछाइयाँ
बहुत बार बहुत बार
मैंने चुपचाप छू ली हैं"[2]

भारतीय कवि की दृष्टि से देखें तो शमशेर के यहाँ जीवन की सामयिक समस्याएँ भी हैं किन्तु जो दीर्घ स्थायी हैं कवि की नज़र उसमें लगी रहती हैं। 'गजानन मुक्तिबोध' तो उनके प्रिय कवि-मित्रों में से एक थे। उनकी बीमारी पर शमशेर ने जो ग़ज़ल लिखी थी वह आज भी भावुक हृदय को पिघला देती है-

"*ज़माने-भर का कोई इस क़दर अपना ना हो जाए*
कि अपनी ज़िंदगी खुद आपको बेगाना हो जाए ।"[3]

इस प्रकार शमशेर के यहाँ कई ऐसे शोकगीत हैं जो बातचीत का कहीं-कहीं अंदाज़ भी लिए हुए हैं। अतः डॉ. नामवर सिंह का यह कथन उचित ही लगता है- "इस करुणा का मर्म

---

1 बात बोलेगी, आकाशे दामामा बाजे..., पृ. 111

2 चुका भी हूँ नहीं मैं, मोहन राकेश के साथ तटस्थ बातचीत, पृ. 35

3 बात बोलेगी, गजानन मुक्तिबोध पृ. 98

समझने के लिए ज़रूरी है यह सोचना कि शमशेर ने इतने शोकगीत क्यों लिखे?- इतने शोकगीत कि एक जगह इकट्ठा कर दें तो पूरी एक किताब बन जाये! और शोकगीत भी किस-किस पर? कोई गुमनाम-सा कम्युनिस्ट साथी। कोई कम्युनिस्ट नेता। कोई समशील साहित्यकार। एक माई जो अपनी माँ नहीं।"[1]

शमशेर की कविताओं में प्रेम अक्सर छलकता रहता है। मानवीय प्रेम हो या सामाजिक, राष्ट्रीय प्रेम हो या प्रकृति प्रेम शमशेर की कविताओं में अपने सौंदर्य के साथ प्रकट होता है। किन्तु हम स्त्री-पुरुष प्रेम संबंधों को विरह-मिलनके रूप में देखने का प्रयास करेंगे। साथ ही यह भी जानने की कोशिश करेंगे कि शमशेर के प्रेम का दायरा कितना विस्तृत है। मुक्तिबोध ने तो प्रणय-जीवन के वास्तविक मनोवैज्ञानिक चित्रण की कमी पर खेद प्रकट किया है तथा शमशेर को 'मुख्यतः प्रणय जीवन के प्रसंगबद्ध रसवादी कवि' के रूप में चिन्हित किया है। उनका तो कहना ही है- "मेरे मत से, प्रणय-जीवन के जितने विविध और कोमल चित्र वे प्रस्तुतु करते हैं, उतने चित्र शायद और किसी नए कवि में दिखाई नहीं देते। उनकी भावना अत्यंत स्पर्श-कोमल है। प्रणय-जीवन में भाव-प्रसंगों के आभ्यंतर की विविध सूक्ष्म संवेदनाओं के जो गुण-चित्र वे प्रस्तुत करते हैं, वे ना केवल अनूठे हैं, वरन अपने वास्तविक खरेपन के कारण प्रभावशाली हो उठे हैं।"[2]-मुक्तिबोध के इस कथन के परिप्रेक्ष्य में शमशेर के प्रणय-जीवन के चित्रों को देखना उचित होगा। अतः प्रस्तुत है शमशेर की प्रारंभिक रचना, जो 1937 में प्रकाशित हुई थी। शीर्षक ही है 'प्रेम'-

"द्रव्य नहीं कुछ मेरे पास
फिर भी मैं करता हूँ प्यार
रूप नहीं कुछ मेरे पास
फिर भी मैं करता हूँ प्यार
सांसारिक व्यवहार न ज्ञान
फिर भी मैं करता हूँ प्यार ।"[3]

---

1 प्रतिनिधि कविताएँ, भूमिका से

2 शमशेर: मेरी दृष्टि में,-मुक्तिबोध(समकालीन हिन्दी आलोचना, पृ. 93)

3 प्रतिनिधि कविताएँ, प्रेम, पृ. 15

दुनियावी जगत में प्रेम के लिए जो आवशयक है वह है-द्रव्य, रूप, शक्ति, यौवन, सांसारिक व्यवहार व ज्ञान। किन्तु कवि के पास कुछ न होते हुए भी भावुक हृदय है। अपने को कुशल व प्रवीण कलाविद न मानते हुए भी कवि का प्रेम नहीं छूट पाता। वह कई उपाय करता है मसलन् जप, ताप, मौन को साधना, देश-विदेश घूमना, तरह-तरह के वेश बदलना आदि। यह न छूटता हुआ प्रेम धीरे-धीरे जिस सुंदरता की ओर बढ़ता है, वह उल्लेखनीय है-

"केवल कोमल, अस्थिर नभ-सी
फिर भी है अनुपम सुन्दर
वह अंतिम भय-सी, विस्मय-सी,
फिर भी कितनी अनुपन सुन्दर ।"[1]

स्पष्ट है कि प्रेम की तीव्र अनुभूति में मृत्यु का सौंदर्य साथ लगा रहता है।

शमशेर को रोमांटिक कवि भी कहा जा सकता है। किन्तु जो कठिनाई सामने आती है उसे विजयबहादुर सिंह के शब्दों में यों कहा जा सकता है- "शमशेर में वस्तुतः रोमांटिक विदग्धता के सूत्र जब तक हमारे हाथ में नहीं आते, कवि की काव्यानुभूति तक किसी भी स्थिति में हमारी पहुँच संभव नहीं है।"[2]- विजयबहादुर जी की यह बात ठीक हो सकती है किन्तु हमारा प्रयास शमशेर के प्रणय-जीवन को समझना है। अतः शमशेर की 1939 में प्रकाशित 'ग़ज़ल के कुछ अशआर पेश हैं-

"ज़माना तुम हो-जहाँ तुम हो-ज़िंदगी तुम हो,
जो अपनी बात पे कायम रहो, तो क्योंकर हो ।"
"ये साँस में जो उसी नाम की अटक-सी है,
वो ज़िंदगी से फरामोश हो, तो क्योंकर हो!"
"हज़ार हम उसे चाहें कि अब न चाहें और,
जो साँस-साँस में रम जाये वो, तो क्योंकर हो!"[3]

---

1 प्रतिनिधि कविताएँ, प्रेम, पृ. 16

2 hindikunj.com/2009/08/blog-post-18.htm#comment-form

3 कुछ और कविताएँ, ग़ज़ल, पृ. 88

शायर की साँस-साँस में महबूबा इस कदर बस गई है कि उसके नाम की अटक भी नहीं जाती है। शमशेर के यहाँ 'आह' शब्द कई बार आता है। कभी 'आह प्रेम घन' के रूप में तो कभी-

"जो आरज़ू में नहीं, अब वो साँस में कुछ है,
वो, आह, दिल से फ़रामोश हो तो क्योंकर हो!"[1]

कवि के दिल से कभी न फ़रामोश होने वाला अटका-सा नाम बेचैन करता है। 'आह' की बेचैनी को या दर्द को भी सुना जा सकता है। 'फिर भी क्यों' 1938 की रचना है किन्तु आज भी ताज़ा लगती है-

"फिर भी क्यों मुझको तुम अपने बादल में घेर लेती हो?
मैं निगाह बन गया स्वयं
जिसमें तुम आज गईं अपना सुर्मई सांवलापन हो ।"[2]

प्रेमिका का सुर्मई साँवला रंग प्रेमी को अक्सर याद आता है। कभी 'कत्थई गुलाब' का नरम-नरम केसरिया साँवलापन तो कभी 'शाम की अंगूरी रेशम की झलक'। साँवलापन कैसा भी हो शमशेर को भाता है और जब भी यह आता है प्रेमिका की याद को ताज़ा करने के लिए, किन्तु-

"वह सुबह नहीं होने देगी जीवन में!
वह तारों की माया भी छुपा गई अपने अंचल में ।
वह क्षितिज बन गई मेरा स्वयं अजान ।"[3]

स्पष्ट है कि शमशेर का प्रेम विरह-मिलन के राग से बंधा हुआ है। जिसका सौंदर्य मूर्तता से अमूर्तता की ओर धीरे-धीरे बढ़ता है।

प्रणय-संवेदना की दृष्टि से शमशेर का प्रेम समर्पण की भावना से ओत-प्रोत है। उनके यहाँ प्रेम महज़ शारीरिक आवश्यकता भर नहीं है बल्कि वह एक पवित्र अनुभूति भी है।

---

1 कुछ और कविताएँ, ग़ज़ल, पृ. 89

2 उदिता, फिर भी क्यों, पृ. 43

3 उदिता, फिर भी क्यों, पृ. 43

शमशेर के लिए प्रेम कभी प्रेरणा स्रोत के रूप में आता है तो कभी तन्मय कर देने वाली भावना के रूप में। 1941 का गीत है-

"धरो शिर
हृदय पर
वक्ष-वह्नि से,-तुम्हें
मैं सुहाग दूँ-
चिर सुहाग दूँ!
प्रेम-अग्नि से-तुम्हें
मैं सुहाग दूँ!"[1]

कवि कभी न समाप्त होने वाले प्रेम से सुहाग देने के लिए आतुर है। किन्तु जो प्रेम-अग्नि है वह विरह-आग में रूपांतरित हो जाती है। कविता का अंतिम बंद है-

"विकल मुकुल तुम
प्राणमयि,
यौवनमयि
चिरवसंत- स्वप्नमयि,
मैं सुहाग दूँ :
विरह-आग,-तुम्हें
मैं सुहाग दूँ!"[2]

कवि अपनी प्रेयसी को हमेशा अपने पास ही रखना चाहता है। शमशेर का प्रेम अलौकिक इस अर्थ में है कि वह सर्वस्व-समर्पण की भावना लिए हुए है। वे अपनी प्रेमिका की कठोरता से कितनी बार तंग आये हैं। 1945 की ग़ज़ल का एक शेर है-

"वो एक बात जो ज़िंदगी बन गई है
जो तुम भूल जाओ तो हम भूल जाएँ"[3]

अत: विश्वनाथ त्रिपाठी का यह कथन-"वह(शमशेर) परम उदार व मानवतावादी थे। उनकी मानवीय करुणा का भी उत्कृष्ट रूप उनकी प्रेम संबंधी कविताओं में उभरा है।

---

1 कुछ और कविताएँ, गीत, पृ. 57

2 कुछ और कविताएँ, गीत, पृ. 57

3 प्रतिनिधि कविताएँ, ग़ज़ल, पृ. 61

शमशेर उन्माद या तीव्रता के कवि हैं, किन्तु उनके यहाँ रागात्मक अंतरसंबंधता कम है। इसी अर्थ में शमशेर रोमांटिक हैं।"[1] - उचित ही है।

शमशेर प्रेम के, करुणा के, भावुक कवि हैं। इसीलिए उनका स्वर कहीं-कहीं बहुत गीला रहता है। प्रेम की तीव्रता तथा दु:ख की तीव्रता उनमें अधिक है। तीव्रता को बताने के लिए शमशेर कई बार अद्भुत प्रयोग भी करते हैं। 1946 में प्रकाशित 'घनीभूत पीड़ा' एक ऐसी ही कविता है। कविता शुरू होती है एक शेर से-

"जबाँदराजियाँ ख़ुदी की रह गई,
तेरी निगाहें कहना था सो कह गईं ।"[2]

प्रेम की भाषा जानने वाला कवि जब प्रेमिका की निगाहें पढ़ लेता है तो स्वयं की अहंपूर्ण बातों पर विराम लगा देता है। एक ख़ामोशी जो साथ-साथ चलती है, किन्तु सुलाने वाली नहीं है-

"-कोई
आँख मुंदो है ना खुली ।
एक ही चट्टान....लहर पार लहर, पार....
सूर्य के इस ओर ठहर
स्तंभ-तुला पर सिहरा
मौन जलद-कन ।"[3]

कवि की यह जिज्ञासा कि 'कोई आँख मुंदी है न खुली' आगे बढ़ती है। दृश्य बदलता है-

"बुलबुले उठे, उड़े
-कि तिरछे मुड़े:
खिले:फेन-कमल बन,
उज्ज्वलतम:
घनपत से दूर, बार-खुले ।
कोमल कण, छन-छन, बुलबुले ।
ज्योति-जुड़े ।"[1]

---

1 आजकल,(सितम्बर,1993) पृ. 10

2 कुछ कविताएँ, घनीभूत पीड़ा, पृ. 46

3 कुछ कविताएँ, घनीभूत पीड़ा, पृ. 46

सागर की लहरों में बुलबुले उठते हैं। उसका रूप फेन कमल-सा है। यहाँ वन में उज्ज्वलतम कमल हैं , शमशेर का चित्रकार भावनाओं की तस्वीर पेश करता है। विश्लेषण नहीं करता। पाठक धीरे-धीरे बादल में ज्योति से बनी हुई या जुड़ी हुई रेखाओं को पहचानने लगता है। दृश्य फिर बदलता है रेखाएँ उभरने लगती हैं। प्रेम की अनुभूति धीरे-धीरे तीव्र होने लगती है। सब कुछ धीरे-धीरे घुलता जाता है और अंत में बंधती है मानवीय करुणा, मौन भाव में डूबी हुई। किन्तु संकेत बताते हैं कि वातावरण में आवाज अभी भी गूंज रही है। अधूरे जीवन में पृष्ठभूमि से आवाज आती है-

"लजाओ मत अभाव की परेख लें
समाज आँख भर तुम्हें न देख ले ।"[2]

विष्णुचंद्र शर्मा जी का इस सिम्फनी के बारे में कथन दृष्टव्य है- "यह 1946 का समाज है। आज़ादी पूर्व की सिम्फनी। यह शमशेर का निज़ी रोमांस का अनुभव है और आज़ाद भारतीय समाज का एक अभाव। गुलाम समाज में आँख भर कर सच्चाइयों को देखने की ताक़त नहीं होती। इसीलिए समाज आज़ादी के पूर्व का कविता की ओट में रहता है। आज़ादी की भावना शमशेर के निज़ी अभाव की ही स्वाधीन चेतना है। प्रेमी हृदय के यह निज़ी चित्र मध्यवर्ग की मन:स्थिति के ही करूण चित्र हैं।"[3]-क्या आज के समाज में जी भर कर सच्चाइयों की देखने की ताक़त है?

प्रेम का आलम्बन कैसा भी हो, वह आमतौर से सुन्दर ही माना जाता है। शमशेर के 'राग' में अकेला हूँ आओं है तो 'आओ' कविता जो 1949 की है में, प्रेम की उत्कट अभिलाषा कवि के पूरे व्यक्तित्व में छाई हुई है-

"खुश हूँ अकेला हूँ,
कोई पास नहीं है-
बजुज़ एक सुराही के,
बजुज़ एक चटाई के,
बजुज़ एक ज़रा-से आकाश के,

---

1 कुछ कविताएँ, घनीभूत पीड़ा, पृ. 47

2 कुछ कविताएँ, घनीभूत पीड़ा, पृ. 50

3 काल से होड़ लेता शमशेर, पृ. 97

जो मेरा पडोसी है मेरी छत पर

(बजुज़ उसके जो तुम होतीं-मगर हो फिर भी यहीं कहीं अजब तौर से ।)"[1]

प्रेमिका के खो जाने का अहसास कवि के अकेलेपन को गहरा कर देता है। सुराही, चटाई और पड़ोसी आकाश के साथ कवि खुश तो है लेकिन प्रेमिका के बिना यह अकेलापन 'दीदों की वीरानी' में बदल जाता है-

"*शेर में ही तुमको समाना है अगर*
जिंदगी में आओ, मुजस्सिम
बहरतौर चली आओ ।"[2]

बहरतौर और मुजस्सिम का प्रयोग इस पुकार में उत्कटता भर देता है जो कविता के आखिरी बंद में और अधिक उत्कट हो जाता है-

"*तुम मुझको*
इस अंदाज़ से अपनाओ
जिसे दर्द की बेगानारवी कहें,
बादल की हँसी कहें,
जिसे कोयल की
तूफ़ान-भरी सर्दियों की
चीख़ें
कि जिसे 'हम-तुम' कहें ।"[3]

अर्थात वह उसे जो कोमल सा 'आओ' के रूप में आमंत्रण देता है, वह जीवन की बेचैन तड़प बन जाता है। कहाँ है ऐसे प्रेमी का स्वर! क्या प्रेम में दर्द का होना अस्वाभाविक है। प्रेमी का स्वर कई बार गीला भी होता है। जैसे 1954 की 'टूटी हुई बिखरी हुई' कविता की निम्न पंक्तियाँ-

"*मेरी बाँसुरी है एक नाव की पतवार-*
जिसके स्वर गीले हो गए हैं,
छप्-छप्-छप् मेरा हृदय कर रहा है....

---

1 कुछ कविताएँ, आओ, पृ. 60

2 कुछ कविताएँ, आओ, पृ. 60

3 कुछ कविताएँ, आओ, पृ. 61

छप् छप् छप् ।''

छप् छप् छप् की ध्वनि गीले स्वर की करुणा बताता है। शमशेर के अंदर प्रेम की इतनी उत्कट चाह भरी हुई है कि गिरिधर राठी जी लिखते हैं कि- ''मज़ा यह कि शमशेर की कविता जितनी जिस्मानी है, उतनी किसी अन्य बड़े हिन्दी कवि की शायद ही हो! आवेग और आवेश, जिनके मूल में आदमी वासना है, उनकी अनेक ख़ास कविताओं में फूटे पड़ते हैं।''[1]-सीधे-सीधे जो देह से जुड़ी हुई हैं उसमें तो वासना है ही किन्तु जो साधारण प्रेम की कविताएँ हैं उनमें भी कहीं-कहीं इस बात को लक्ष्य किया जा सकता है-

''आह, तुम्हारे दाँतों से जो दूब के तिनके की नोक
उस पिकनिक में चिपकी रह गई थी,
आज तक मेरी नींद में गड़ती है ।''[2]

इसी प्रकार जब जिस्म को भी ख़्याल की तरह महसूस किया जाये-

''ख़्याल भी है मेरा जिस्म, गो नहीं वह मैं
ये ज़िंदगी की है एक किस्म, गो नहीं वह मैं,
जो होने-होने को हो, वो मैं हूँ....''[3]

स्पष्ट है कि शमशेर का प्रेम बहुविध है। वह जितना आत्मिक है उतना ही दैहिक। एक विचित्र प्रेम-अनुभूति, 'थरथराता रहा' कविता में इस रूप में व्यक्त हुई है-

''थरथराता रहा जैसे बेंत
मेरा काय....कितनी देर तक
आपादमस्तक
एक पीपल-पात मैं थरथर ।''[4]

प्रेम की यह विचित्र अनुभूति पूरे शरीर में झनझनाहट पैदा करती है-

''कांपती काया शिराओं-भरी
झन-झन
देर तक बजती रही

---

1 उहापोह, ठहरा हुआ मगर पहुँचा हुआ कवि; शमशेर(लेख), पृ. 39

2 कुछ और कविताएँ, टूटी हुई, बिखरी हुई, पृ. 55

3 इतने पास अपने

4 इतने पास अपने, थरथराता रहा, पृ. 71

और समस्त वातावरण
मानो झंझावात

ऐसा क्षण वह आपात
स्थिति का ।"[1]

इस छोटे आकार की कविता में ऐसा क्षण भी आता है, जिसे पूरी देह ग्रहण करती है और उसे अनुभव भी करती है। विचित्र प्रेम-अनुभूति इतनी सशक्त रूप में अभिव्यक्त हुई है कि डॉ. नामवर सिंह को लिखना पड़ा-"लेकिन शमशेर सौंदर्य के ही नहीं, प्रेम के कुछ विलक्षण अनुभवों के भी चित्रकार हैं।...लेकिन उससे किसी तरह कम विचित्र वह अनुभूति नहीं है जब वे कहते हैं"[2]-

"*तुमने मुझे और गूँगा बना दिया*
एक ही सुनहरी आभा-सी
सब चीज़ों पर छा गई"[3]

'तुमने मुझे' की ये काव्य-पंक्तियाँ प्रेम की व्यथा को अभिव्यक्त करती हैं। प्रेम की गहरी भाषा कैसी होती है निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट है-

"*अपनी भाषा तो भूल ही गया जैसे*
चारों तरफ की भाषा ऐसी हो गई
जैसे पेड़ों पौधों की होती है
नदियों में लहरों की होती है ।"[4]

कितनी तीक्ष्ण है यह व्यथा। प्रेमिका का अस्तित्व हर जगह महसूस करता है प्रेमी। प्रेम का सौंदर्य प्रकृति सौंदर्य से युक्त है। अतः नंदकिशोर नवल का यह कथन द्रष्टव्य होगा-"शमशेर संश्लिष्ट अनुभूतियों के कवि हैं। इसी के परिणामस्वरूप वे समाज की भी कविता लिखते हैं तो हमें उसमें उनके व्यक्ति-मन की पीड़ा और अकेलापन देखने को मिलता है। इसी तरह

---

1 इतने पास अपने, थरथराता रहा, पृ. 71

2 प्रतिनिधि कविताएँ, भूमिका से

3 प्रतिनिधि कविताएँ, तुमने मुझे , पृ. 188

4 प्रतिनिधि कविताएँ, तुमने मुझे , पृ. 188

उनकी प्रेम-कविता का भी एक सामाजिक सन्दर्भ होता है। उनका प्रेम कोई आध्यात्मिक वस्तु नहीं है। इसी करण वह 'क्रूरतम' और 'कटुतम' है। शमशेर का मानव-सौंदर्य भी प्रकृति-सौन्दर्य से युक्त है और उनका प्रकृति-सौन्दर्य भी मानव सौन्दर्य से।"[1]- ज़ाहिर है शमशेर की व्यक्तिपरक कविताकओं में भी मानवीय उपस्थिति बराबर बनी रहती है। यह सच है कि शमशेर की कविताओं में अकेलेपन का अवसाद, मृत्युबोध आदि है किन्तु वह प्रेम की पूर्णता को प्राप्त करने का प्रयास है। प्रेम के सौंदर्य का फ़लक कितना बड़ा हो सकता है आगे की कविताओं से संभवतः स्पष्ट होगा।

शमशेर के यहाँ कला भी प्रेम और सौंदर्य का स्रोत है। कवि कला या कविता के सन्दर्भ में 'राग' 1945 की ये पंक्तियाँ-

"उसने मुझसे पूछा, इन शब्दों का क्या
मतलब है? मैंने कहा : शब्द
कहाँ है?....."[2]

या फिर-

"...और मोर दूर और काई दिशाओं से
बोलने लगे---पीयुअ! पीयुअ! उनकी
हीरे-नीलम की गर्दनें बिजलियों की तरह
हरियाली के आगे चमक रही थीं ।
कहीं छिपा हुआ बहता पानी
बोल रहा थाः अपने स्पष्ट मधुर
प्रवाहित बोल ।"[3]

रचना में भी प्रकृति के दृश्य अपने में अदृश्य को समेटे हुये हैं। जो प्रेम का एक ऐसा माध्यम है जिससे पाठक भी संवाद बनाये रहता है। शमशेर के लिए कविता भी एक पद्य या कविता है, यादों की पुस्तक या फिर 'जब आँसू छलक न जाकर आकाश का फूल बन गया हो'। दरअसल यह भ्रान्ति नहीं है। शमशेर कविता के लिए कविता नहीं लिख रहे हैं वरन वह यह

---

1 शब्द जहाँ सक्रिय हैं, पृ. 15

2 कुछ कविताएँ, राग, पृ. 11

3 कुछ कविताएँ, राग, पृ.12

बतला रहे हैं कि कविता की स्वाभाविक जगह कहाँ है। कविता या कला तब तक अपनी सम्पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकती जब तक वह पाठकों के पास न पहुँचे। क्या कोई ऐसा राग हो सकता है जो 'रचना' पर लिखा गया हो और हमारे अंदर प्रेम करने जैसी गहरी अनुभूति पैदा कर दे। शमशेर यही करते हैं। 'टूटी हुई, बिखरी हुई' की यह लय-

"मगर उसके बाल मेरी पीठ के नीचे दबे हुये हैं
और मेरी पीठ को समय के बारिक़ तारों की तरह
खुरच रहे हैं"[1]

यानी यह एक सम्पूर्ण मानवीय अनुभव है। जो हमें किसी भयानक और वैचारिक नींद से झकझोर देता है और कुछ क्षण का स्वाद देकर विरत हो जाता है। शमशेर ने सौन्दर्य को या प्रेम के सौंदर्य को अपनी सम्पूर्णता में पकड़ने की कोशिश की है। कविता या कला के माध्यम से सौंदर्य और प्रेम की मिलीजुली अनुभूति शमशेर जैसे कवि से ही संभव है।

प्रेम हो या सौन्दर्य शमशेर उसे सम्पूर्णता में पकड़ने की कोशिश करते हैं। इतनी सूक्ष्म पकड़ निःसंदेह उन्हें कवि हृदय या चिंतन से प्राप्त हुई है। जिसे 'शुद्ध सौन्दर्य' कहा जाता है उसमें भी कवि प्रेम के चित्र खींचता है हाव-भाव, रूप, अंग-प्रत्यंग-स्पर्श, कल्पना, निष्ठुरता स्मृति आदि विविध दशायें शमशेर के 'सौन्दर्य' में आकृति रूप में मिलती हैं। 'सौन्दर्य' शीर्षक कविता में भी प्रेम की विभिन्न स्थितियाँ प्राप्त होती हैं-

"एक सोने की घाटी जैसे उड़ चली
जब तूने अपने हाथ उठाकर
मुझे देखा
एक कमल सहस्त्रदली होठों से
दिशाओं को छूने लगा
जब तूने आँख-भर मुझे देखा।"[2]

इस चित्र में प्रेमी प्रेमिका के हाथ उठाकर देखने मात्र से जो उल्लास महसूस करता है वह 'एक सोने की घाटी के उड़ने' में व्यक्त हुआ है। पाठक महसूस करता है कि जैसे वह साकार

---

1 कुछ और कविताएँ, टूटी हुई, बिखरी हुई, पृ. 52

2 इतने पास अपने, सौन्दर्य, पृ. 56

देह से गुज़रने का चित्र देख रहा हो। किसी रहस्यवाद का भ्रम न हो इसलिए 'आँख-भर देखा' की अर्थ ध्वनि पर ध्यान देना चाहिए। इसी कविता का एक और अंश है-

"हाँ तेरी हँसी को मैं ऊषा की भाप से निर्मित
गुलाब की बिखरती पंखुड़ियाँ ही समझता था :
मगर वह मेरा हृदय भी कभी छिल डालेगी
मुझे मालूम न था ।"[1]

प्रेमिका की हँसी का यह अद्भुत चित्र रूप और रंग से निर्मित है। जो पाठक में मानवीय उपस्थिति का अहसास कराती है- हँसती हुई युवती का प्रकृति के बीचोबीच खड़े होने का दृश्य। अतः परमानंद श्रीवास्तव का यह कथन उचित है- "शमशेर के लिए कवि-कर्म भी सौन्दर्य-चिंता का विषय है। सौन्दर्य की अर्थवत्ता भी उनके लिए कहीं अधिक गहरी है। शमशेर की सौन्दर्यानुभूति में लोक और लोकोत्तर का द्वंद्व अकल्पनीय नहीं है, पर उसके निर्दिष्ट रहस्यवादी या आध्यात्मिक अर्थ निकले जाएँ तो यह शमशेर की बुनियादी काव्य-प्रकति के प्रति अन्याय ही माना जायेगा।"[2]-कहा जा सकता है कि शमशेर के 'शुद्ध सौन्दर्य' में भी दैहिक अनुभूति के चित्र कम नहीं हैं। किन्तु उसे आत्मानुभूति से अलगाया नहीं जा सकता। वस्तुतः शमशेर का सौन्दर्य निराकार व साकार का ही।

जिस प्रकार 'सौन्दर्य' में शमशेर को चिंतन की बारीकी दिखाई पड़ती है तथा स्त्री-प्रेम से सम्बंधित विविध चित्रों की रूपाकृति मिलती है उसी प्रकार नारी देह में भी सौन्दर्य या शिल्प की कारीगिरी को देखा ज सकता है। भारी देह को देखकर ऐसा लगता है जैसे शमशेर मूर्ति गढ़ रहे हों। 'एक ठोस बदन अष्टधातु का-सा' शीर्षक कविता की निम्न पंक्तियाँ देखिये-

"एक ठोस बदन अष्टधातु का-सा
सचमुच?
जंघाएँ दो ठोस दरिया
ठैरे हुये-से

---

1 इतने पास अपने, सौन्दर्य, पृ. 57

2 शब्द और मनुष्य, पृ. 57

मगर जानता हूँ कि वो
बराबर-बराबर बहुत तेज़
रौ में है

ठै रा हुआ-सा मैं हूँ मेरी
दृष्टि एकटक"[1]

दरअसल शमशेर नारी देह की विभिन्न भंगिमाओं को तो चित्रित करते ही हैं परन्तु वह नारी देह जिसे कवि 'अष्टधातु का-सा' कहता है गति में है, तेज़ रौ में है/अगर ठहरी हुई है तो कवि की दृष्टि/वह एकटक देखे जा रहा है 'ठोस वक्ष कपोल' जो उसे 'चैलेंज-सा' निमंत्रण देते हैं। कवि या शिल्पकार मूर्ति में भी गतिशील नारी देह की मुद्राओं का चित्रण करता है तथा नारी देह की चंचलता को भी मूर्ति गढ़ने में लाना चाहता है। यह शमशेर की कोरी प्रयोगशीलता नहीं अपितु शिल्पानुभूति का अतिरिक्त आयाम है। कह सकते हैं कि शमशेर सौन्दर्य की पूर्णता के कवि हैं। नंदकिशोर नवल के हवाले से- "मार्क्सवाद के अनुसार अर्थ-व्यवस्था यदि जड़ हैं, तो सौन्दर्य पुष्प-प्रस्फुटन। गोर्की ने भी इस बात पर बल दिया है कि जनता की स्वतंत्रता और सौन्दर्य की आकांक्षा ही सर्वहारा क्रांति के लिए निर्णायक होती है। स्वभावतः समाजवादी समाज में जनता को शुद्ध उपयोगितामूलक आवश्यकताओं की पकड़ से मुक्त कर उनमें प्रकृतिप्रदत्त सौन्दर्यात्मक संवेदना को जगाने और पूर्ण स्वरूप से विकसित करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार सौन्दर्य से प्रगतिशील चेतना का विरोध नहीं, घनिष्ट सम्बन्ध है। इस प्रकार शमशेर हिन्दी के आधुनिक कवियों में इस दृष्टि से अप्रतिम हैं कि उनकी सौन्दर्य-चेतना अत्यधिक विकसित है। यह उनके व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का सूचक है।"[2]- निश्चित रूप से शमशेर के यहाँ सौन्दर्य मनुष्य का हो या कला का या प्रकृति का उसकी सूक्ष्म अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में देखा जा सकता है।

जिस प्रकार प्रेम की शक्ति का अहसास शमशेर को है उसी प्रकार कला की शक्ति का भी। यह सच है कि उनकी कलावस्तु का फ़लक सीमित है और वे विषय क्षेत्र सीमित हैं

---

1 प्रतिनिधि कविताएँ, एक ठोस बदन अष्ठधातु का-सा, पृ. 184

2 शब्द जहाँ सक्रिय हैं, पृ. 12

जिनमें वह अपने को व्यक्त करते हैं, परन्तु जिन रूपों में वे अपने आप व्यक्त करते हैं उन्हीं में उनकी कलात्मकता की संभावना भी निहित है और गहराई भी दिखाई देती है। उनके लिए तो कला मनुष्य की आत्मा का सबसे बड़ा संघर्ष है। मनुष्य हो या प्रकृति, कला हो या सौन्दर्य सब कुछ 'इतने पास अपने' की 'कला' में ही अन्तर्निहित है-

"कला सबसे बड़ा संघर्ष बन जाती है
मनुष्य की आत्मा का-
प्रेम का कैवल कितना विशाल हो जाता है
आकाश जितना
और केवल उसी के दूसरे अर्थ सौन्दर्य हो जाते हैं
मनुष्य की आत्मा में ।"[1]

जो प्रेम का कमल कला में खिलता हो वह सीमित कैसे हो सकता है। मनुष्य की आत्मा का विस्तार इतना हो जाता है कि वह सौन्दर्य की सृष्टि करने लगता है। इस प्रकार कला में आत्मा, प्रेम, संघर्ष और सौन्दर्य एक साथ सगुम्फित हैं। डॉ. वीरेंद्र सिंह का तो स्पष्ट मत है कि-"शमशेर नितांत एवं मात्र 'रूपवादी' अथवा 'कला कला के लिए' सिद्धांत के पक्षपाती नहीं हैं, पर यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि उन्होंने 'रूपवाद और यथार्थ के 'कटु तिक्त' रूप का एक ऐसा 'घोल' प्रस्तुत किया है जो उनका अपना 'निजी' है। बहिरंग पक्ष(काव्य का) को देखने में तो 'रूपवाद' का आभास अवश्य लगता है, पर कवि की कला, रूपवाद का अतिक्रमण कर, एक निजी सौन्दर्य-बोध का नया आयाम खोलती है। यहाँ पर मैं 'रूपवाद' को पूर्ण रूप से 'नकार' नहीं रहा हूँ, पर उसके उचित एवं सार्थक निहितार्थ की ओर संकेत कर रहा हूँ।"[2]- 'वाद' के किसी भी किन्तु, परन्तु से बेहतर है की डॉ. खगेन्द्र ठाकुर को सुना जाये- "यह सही है कि शमशेर दुरूह कवि हैं, लेकिन दुरूहता भाषागत नहीं, अंतर्वस्तुगत है। उनकी अभिव्यक्ति में जो पेचीदगी दिखाई पड़ती है, वह उनकी काव्य-चेतना से बनती है। उनके प्रशंसकों ने उनकी दुरुहता को स्वीकार किया है और ऐसे विद्वानों ने उन पर जो लिखा है, वह प्रायः प्रभाववादी आलोचन हो गई है। यहाँ इतना कह कर उनका प्रसंग

---

1 इतने पास अपने, कला, पृ. 44

2 बिम्बों से झाँकता कवि : शमशेर, पृ. 33

समाप्त करता हूँ कि उनकी अंतर्वस्तु का भेद खुल जाने पर हम पते हैं कि वे प्रगतिशील चेतना से अलग नहीं हैं। उनकी काव्य-चेतना समष्टिवादी है, व्यक्तिवादी नहीं।"[1] –सपष्ट है।

शमशेर का अन्तरंग संघर्ष जिजीविषा मूलक है। नि:संदेह सामयिक समस्या भी उनके यहाँ कम नहीं हैं, किन्तु जो मूल समस्य है वह मानव मात्र से जुड़ी हुई है। और शमशेर इसी समस्या से मुठभेड़ करते हैं। 'चुका भी हूँ मैं नहीं' की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"चूका भी हूँ मैं नहीं
कहाँ किया मैंने प्रेम
अभी ।
जब करूँगा प्रेम
पिघल उठेंगे
युगों के भूधर
उफन उठेंगे
सात सागर ।"[2]

कवि के लिए प्रेम जीवन का निवारी हिस्सा है। एक ऐसा मूल्य है जो मनुष्य के लिए बेहद ज़रूरी है। इसलिए कवि का यह आश्वासन-

"सरल से भी गूढ़, गूढ़तर
तत्व निकलेंगे
अमित विषमय
जब मथेगा प्रेम सागर
हृदय ।"[3]

ज़ाहिर है न तो शमशेर चुक गए हैं और ना ही उनका प्रेम। उनका प्रेम आज भी उनकी कविता में जीवित है। प्रेम में ही उन्होंने जीवन की तलाश की है। किन्तु जब जीने की आकांक्षा और प्रेम के बीच कोई आ जाये तो-

"मौन आहों में बुझी तलवार

---

1 परिकथा, ऐतिहासिक विरासत की जन्मशती(लेख), मई-जून-2010, डॉ. खगेन्द्र ठाकुर

2 दूसरा सप्तक, चुका भी नहीं हूँ मैं , पृ. 104

3 दूसरा सप्तक, चुका भी नहीं हूँ मैं , पृ. 104

तैरती है बादलों के पार ।
कमकर ऊषाभआशा आधार
गले लगते हैं किसी के प्राण ।"[1]

शमशेर के यहाँ 'मौन' कई बार आता है । इसलिए कवि के 'मौन' को समझ लेना आवश्यक होगा। शमशेर की सृजन-प्रक्रिया में यह 'मौन' एक ख़ास सन्दर्भ रखता है क्योंकि इसी के द्वारा कवि 'काल क्षण में मौन अमरता' प्राप्त करता है। इस 'मौन' की व्याख्या विस्तार से विष्णुचंद्र शर्मा जी ने की है। तथा उस 'मौन' को देखा-सुना है। एक प्रसंग विष्णु जी सुनाते हैं-"शमशेर ने 'अज्ञेय' से अपनी कविता सुनाई थी। स्वर शमशेर का था उदात्त। आँखों से जैसे वह गुपचुप अज्ञेय से बातचीत कर रहे थे। मैंने उसी दिन महसूस किया था: दोनों आत्मालाप के कवि हैं। यह अज्ञेय से शमशेर का आत्मालाप मेरी लिए एक 'मौन अमरता' भी। अज्ञेय की 'सुरुचि' पर सोचने वाला शमशेर के बिना कौन है आज?"[2] दूसरा प्रसंग है-"अपने एकांत से बहुत कम अज्ञेय 'बाहर' आते थे। जबकि शमशेर और रघुवीर सहाय, 'बाहर' रहते हुये अचानक भविष्य में कहीं अटक जाते थे। शमशेर ने शाम के अटके पत्ते को कभी ऐसे ही आशा भारी आँखों से देखा था। उसी दिन मैंने रघुवीर जी में शमशेर के करीब पहुँचते का उतावलापन भी देखा था। उन्होंने फोन किया था अपने कमरे से। फिर थोड़ी अधीरता से कहा था, 'नीचे हूँ। कार नहीं मिली तो मैं, ऐसे ही शमशेर जी के पास जा रहा हूँ।' फोन पर रघुवीर जी बच्चों जैसे अधीर थे। इस अधीरता भरे मौन में था शमशेर के प्रति श्रद्धाभाव, दूसरा था नए ज्ञान की खोज का नागर संस्कार।"[3]-तो क्या अब भी डॉ. रामविलास शर्मा के इस प्रारंभिक वाक्य- "अज्ञेय और मुक्तिबोध की तरह-लेकिन उनके कई वर्ष बाद-शमशेर बहादुर सिंह भी रहस्यवाद की ओर आकृष्ठ हुए।"[4] की प्रासंगिकता बनी हुई है। दरअसल रामविलास जी जिसे रहस्यवाद कहते हैं वह शमशेर और 'अन्य' (उसके) के बीच का एक मौन विस्तार है।

---

1 कुछ कविताएँ , मौन आहों में बुझी तलवार, पृ. 26

2 काल से होड़ लेता शमशेर, पृ. 14

3 काल से होड़ लेता शमशेर, पृ. 38

4 नयी कविता और अस्तित्ववाद, पृ. 79

जो कवि अपने को चुका हुआ न मानता हो वह 'ओ युग आ' के साथ धीरे-धीरे बढ़ेगा और अपने समय से कुछ कहेगा भी। उसकी 'बात' जब दूर तलक जायेगी तो 'मेरे समय को...' संबोधित भी करेगी-

"मेरे समय को एक काश की तरह काट दिया गया है ।"

* * *

"शतरंज का एक खाना ही
जिसमें तुम मुझे ऊपर उठाकर रखते हो
हवा में कुछ देर अंगूठे और अँगुलियों के बीच
अनिश्चय में थामे हुए
जिस समय मैं समझता हूँ कि यह
मेरी कल्पनाशीलता का लोक है

मगर जो वास्तव में एक बारीक़ काट है
रुके हुए साँस की ।"[1]

जिस कवि को एक तोता बना दिया जाये वह रटे हुए मन्त्र का जाप तो करेगा ही। पर शमशेर इसी रटंत विधा से परेशान हैं। दरअसल यह कवि की विवशता उतनी नहीं जितनी कि वर्तमान समाज की है। इसी प्रकार शमशेर की पीड़ा समाज की पीड़ा है-स्वतंत्रता की चाह है। हर तरह के 'मठ' से स्वतंत्रता चाहने वाला व्यक्ति क्या समाज-घर-परिवार से निरपेक्ष हो सकता है? ऐसा कवि अपने ही अंदर दूसरों को देखता है तथा अन्य में अपना चेहरा देखता है। इसलिए वह मनुष्य मात्र की बुनियादी आकांक्षा की बात करता है। 'काल तुझसे होड़ है मेरी' शीर्षक कविता में शमशेर ललकारते हैं-

"काल,
तुझसे होड़ है मेरी: अपराजित तू-
तुझमें अपराजित मैं वास करूँ ।"[2]

कबीर भी भिनभिनाते हुए काल को फटकार लगाते हैं किन्तु शमशेर उस पर धीरे-धीरे चढ़ रहे हैं-

---

1 इतने पास अपने, मेरे समय को..., पृ. 41

2 प्रतिनिधि कविताएँ, काल तुझसे होड़ है मेरी, पृ. 172

"भाव, भावोपरी
सुख, आनंदोपरी
सत्य-सत्यासत्योपरी
मैं-तेरी भी, ओ 'काल' ऊपर!
सुन्दरी यही तो है, जो तू नहीं है, ओ काल ।"[1]

'काल' से मुठभेड़ लेते शमशेर की क्या यह निजी समस्या है! मुक्तिबोध ने भी जीने की कला सिखाई थी और शमशेर ने उस कला का साहस दिखाया। आगे भी-

"क्रांतियाँ, कम्युन,
कम्युनिस्ट समाज के
नाना कला विज्ञान और दर्शन के
जीवंत वैभव से समन्वित
व्यक्ति मैं ।
मैं, जो वह हरेक हूँ
जो, तुझसे, ओ काल, परे है ।"[2]

प्रत्येक मनुष्य की चाह 'मैं, जो वह हरेक हूँ' क्या मानवीय मूल्य से अलग है? अतः खगेन्द्र ठाकुर जी का यह कथन-"मैं पूछना चाहता हूँ कि कोई आदमी मुक्त मन का हो सकता है? यदि कोई समाज से मुक्त होगा, तो भी क्या परिवार से, बच्चों से, उनकी समस्याओं से अलग हो सकता है? उनसे मुक्त होगा तो गैर जवाबदेह या फिर अदृश्य भक्ति को समर्पित होकर मनुष्यत्व से ही मुक्त हो जायेगा, और शुद्ध मनुष्य अथवा शुद्ध कवि कैसा होगा? सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक यथार्थ या मानवीय चिंतन से अलग मनुष्य अथवा कवि को कुछ लोग शुद्ध कवि कहते हैं। लेकिन क्या शमशेर ऐसे कवि हैं? शमशेर क्या कोई भी कवि शुद्ध होगा तो वह कवि नहीं होगा। शमशेर शायद इन सबको पढते तो शायद यही कहते-हमारे भी हैं मेहरबाँ कैसे-कैसे?"[3]-उचित है।

शमशेर ने प्रकृति के कई चित्र बनायें हैं, प्रकृति की भरी-पूरी गति शमशेर के काव्य में प्राप्त होती है, शमशेर का कवि प्रकृति में स्वछन्द उड़ता हुआ तोता है। कवि की प्रारंभिक

---

1 प्रतिनिधि कविताएँ, काल तुझसे होड़ है मेरी, पृ. 172

2 प्रतिनिधि कविताएँ, काल तुझसे होड़ है मेरी, पृ. 172

3 परिकथा, ऐतिहासिक विरासत की जन्मशती(लेख), मई-जून-2010, डॉ. खगेन्द्र ठाकुर

रचनाओं को यदि हम देखें तो स्पष्ट होगा कि उसकी माँ यह वसुधा ही है और वहीं से वह प्रेरणा लेता है, उसे सजाता-संवारता है तथा अपनी कविता में 'कवि कला का फूल हूँ' बन जाता है। वसुधा की मूर्ति ही उसे, देश से, दूर-पास के लोगों से जोड़ती है, तथा प्रेम के साथ-साथ सुन्दर सृजन की प्रेरणा देती है, यह संभव है यदि हम आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इस कथन पर ध्यान दें-"यदि वह(मनुष्य) लहलहाते हुए खेतों और जंगलों, हरी घास के बीच घूम-घूमकर बहते हुए नालों, काली चट्टानों पर चाँदी की तरह ढलते ही झरनों, मंजरियों से लदी हुई अमराइयों और पटपर के बीच खड़ी झांड़ियों को देख कर छन भर लीन न हुआ, यदि कलरव करते हुए पक्षियों के आनंदोत्सव में उसने योग न दिया, यदि खिले हुए फूलों को देख न खिला, यदि सुन्दर रूप सामने पाकर अपनी भीतरी कुरूपता का उसने विसर्जन न किया, यदि दीन-दुखी का आर्त्तनाद सुन वह न पसीजा, यदि अनाथों और अबलाओं पर अत्याचार होते देख क्रोध से न तिलमिलाया, यदि किसी बेढ़ब और विनोदपूर्ण दृश्य या उक्ति पर न हंसा तो, उसके जीवन में क्या रह गया? इस विश्वकाव्य की रसधारा में जो थोड़ी देर के लिए निमग्न न हुआ उसके जीवन को मरुस्थल की यात्रा ही समझना चाहिए।"[1]-शमशेर पर आचार्य शुक्ल का यह कथन कितना ठीक बैठता है, यह उनके प्रकृति चित्रण को देखे बिना नहीं कहा जा सकता, किन्तु 'क्षण भर लीन' होने की दशा से भिन्न शमशेर एक ही भावदशा में लंबे समय तक रुक सकते हैं, 'प्रकृति-रूप' के सौन्दर्य को शमशेर की दृष्टि एकटक देखे जा रही है-

"एक चिकना चौड़ा आबशार
सांवला संगमर्मरी
आधा खिला व्यापक-सा गुलाब एक
मह-मह सुगन्ध शक्ति में
स्पष्टतः सुरक्षित"[2]

चिकने चौड़े, सांवले-संगमर्मरी झरने का दृश्य तथा अधखिले बड़े से गुलाब में भारी खुशबू का दृश्य इन्द्रियों को खोल देता है, आज-कल के भयानक प्रदूषण में कहाँ मिलेंगे ऐसे दृश्य?-

"गुलाब बाड़ी टपक रही है ।
हम आदीवासी-से मौन

---

1 चिंतामणि, पृ. 23-26

2 प्रतिनिधि कविताएँ, प्रकृति-रूप, पृ. 183

भीगे हुए खड़े हैं ।"[1]

अद्भुत है प्रकृति का यह रूप और अद्भुत है शमशेर की कला दृष्टि, शमशेर को मुक्तिबोध ने मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी कवि कहा है, किन्तु साथ ही आत्मपरक भी, जिसका तात्पर्य है की भाव-प्रसंग के चुनाव में, अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं औरत बाह्य के समवेदनाओं के चित्रण में शमशेर विरल है, शमशेर की इस विलक्षणता को रेखांकित करते हुए मुक्तिबोध लिखते हैं- "शमशेर मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी कवि होते हुए भी आत्मपरक हैं, उनकी आत्मपरकता उन्हें भाव-प्रसंग के भीतर उपस्थित अपनी संवेदनाओं के चित्रण के लिए बाध्य करती है, उनकी संवेदना वास्तविक है, वह प्रसंगबद्ध है, प्रसंग उस संवेदना के रूप को निर्धारित करता है, शमशेर संवेदनाओं के प्रसंग विशिष्ट गुणों का बहुत सफलतापूर्वक चित्रण करते हैं। इस चित्र के बिना इस भाव-प्रसंग का ताना-बाना प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। सामान्यीकृत भावनाएँ प्रकट करना बहुत आसान है, किन्तु भाव-प्रसंग में साक्षात संवेदनाओं के वास्तविक चित्रण के लिए अनेक नए प्रयोग अत्यंत आवश्यक हो उठते हैं।"[2]- इस लिहाज से 1938 में प्रकाशित 'आधी रात' कविता का अनूठापन देखा जा सकता है-

"बहुत धीरे-धीरे
बजे हैं बा ऽ रा ऽ....
गिना है रुक-रुक कर मैनें
बा र ह बा र
सुनों!
अब भी वैसे ही हवा में
बा रा बज रहे हैं.....
(बादल घिरे हुए हैं दिन भर ।)
ए का ए क
श्वान भूकने लगा ।
गा उठा बिरहा कोई दूर जाता पथ पर....
नीम के सन्नाटे में एकाएक जोड़ा
उल्लुओं का चीख़ उट्ठा-

---

1 प्रतिनिधि कविताएँ, प्रकृति-रूप, पृ. 183

2 शमशेर: मेरी दृष्टि में-मुक्तिबोध(समकालीन हिन्दी आलोचना , पृ. 90)

प्री ई अ! प्री ई अ! प्री ई अ!''[1]

प्रकृति-संवेदना का यह नया तेवर अकेलेपन के अवसाद से बाहर निकलने की कोशिश है। यह तभी संभव है जब चेतना सो न गई हो। इस पूरी कवित में ध्वनियों के अलग-अलग 'शेड्स' के प्रयोग से जो संगीत बनता है वह प्रेम का है, यह 'आधी रात' शमशेर की बिलकुल अपनी है, 'रुक-रुक' का प्रयोग तथा 'बारह बार' के सभी अक्षरों को तोड़कर एक-दूसरे से अलग-अलग कर देने पर एक जगे हुए, साँस रोककर इंतज़ार करते हुए, आधी रात को ठीक से निहार रहे व्यक्ति की अनुभूति होती है। कुत्ते भूंकने लगते हैं, दूर जाते किसी पथिक के विरहा गाने की आवाज़ अचानक सुनाई देती है। इन दोनों की ध्वनियों से रात के अकेलेपन का अहसास और गदरा हो जाता है, कविता का आखिरी बंद इस रात के विषाद को और तीखा कर देता है, नीम का पेड़ बिलकुल ख़ामोश खड़ा है, पत्तियां स्थिर हैं, अचानक उल्लुओं के एक जोड़े की कर्कश आवाज़ इस सन्नाटे और स्थिरता को चीर देती है, गहरे अकेलेपन के अवसाद से निकलकर बाहर आने की कोशिश अंततः सफल होती है। इसलिए विजयबहादुर सिंह का कथन उचित ही है- ''जब काव्य-स्रोत लबालब भरा हुआ हो और फूट पड़ने को आतुर हो तब सिर्फ संतुलन ठीक रखना पड़ता है और शमशेर में यह संतुलन हद दर्ज़े का है। उनकी कविताओं में भावों की गंभीर गूँजे और मद्धिम-संगीत की वृत्ताकार ताने हैं।''[2]

शमशेर के काव्य में प्रकृति सौन्दर्य की आभा उसी तरह दिखाई देती है जिस तरह मनुष्य के सौन्दर्य की, उनके काव्य में किसी न किसी रूप के दृश्य दिखाई देते हैं। उनकी कविताओं में सुबह, शाम, रात्रि तथा आसमान अक्सर दिखाई देते हैं, उनका प्रिय विषय 'शाम' है। शमशेर का कहना है कि-''अपने शामों की खुरमुर में जब पच्छिम के मैले होते हुए लाल-पीले, बैंगनी रंग, हर चीज़ को लपेटकर अपने गहरे मिले-जुले धुंधलके में सोने-सा लगता है-आपने क्या उस वक्त कभी ध्यान दिया है कि कैसे हर चीज़ एक ख़ामोश राग में डूबने लगती है? वक्त के बहते हुए धारे में एक ठहराव-सा आता महसूस होता है....उस

---

1 उदिता, आधी रात, पृ. 35

2 जन कवि, पृ. 37

अजीब से शांति के क्षण में कहीं दूर उदासी की घण्टी सी बजती हुई सुनाई देती है।"[1] - इस दृष्टि से 1938 की "आज मई की शाम अकेली' शीर्षक कविता को देखा जा सकता है। जिसमें मई की शाम उसी तरह अकेली है जिस तरह कवि को अकेलेपन का अवसाद घेरे हुए हैं। अंधकार, मौन, गतिहीनता को शमशेर की कविताओं में कई रूपों में देखा जा सकता है। एक उदाहरण 1938 में प्रकाशित 'घिरते आकाश को' देखिये-

"घिरते आकाश को ताकता हताश ।
गहरे नभ में चाँद खोता जाता है:
अन्धकार
चुप-चुप हँसता आता सब ओर ।"[2]

'घिरता आकाश' जितना गहराता जाता है कवि का माँ भी उतना ही विषाद से भरता जाता है, गहराते अँधेरे में सुबह भी उजाला नहीं कर पाती क्योंकि-

"यह सुबह जो शाम-सी हुई है
मानों य अभी नहीं हुई है ।"[3]

जब सुबह भी शाम के मानिंद लगने लगी हो तब उम्मीद की किरण आये भी तो कैसे? उदासी और अकेलेपन का यह अहसास 'उदिता' संग्रह की कई कविताओं में स्पष्ट देखा जा सकता है।

आधुनिक कवि की यह विशेषता रही है की वह प्रकृति को अपनी इच्छानुसार सृजित करता रहा है। प्रकृति से संघर्ष करते हुए उसे अपने अनुकूल बनाकर उसके सौन्दर्य का उदघाटन करना कवि का दायित्व रहा है। शमशेर ने भी प्रकृति के जो दृश्य तैयार किये हैं उससे उनकी मन:स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। शाम हो या रात, अँधेरा शमशेर को घेरता ही है। यह बात स्पष्ट होती है 1940 में प्रकाशित 'कमरे में आया' शीर्षक कविता से, जहाँ 'शाम को कोमल अंधियाला' धीरे-धीरे छाता जाता है-

"दीवारों पर, छत पर चुप-चुप
कुहरे-सा काला कुछ उदास

---

1 उदिता, भूमिका से

2 उदिता, घिरते आकाश को, पृ. 46

3 उदिता, जगा-सा थका-सा मन मेरा, पृ. 53

मन छाया ।"[1]

किन्तु यह अंधेरा धीरे-धीरे इतना गहरा होता जाता है कि पता ही नहीं चलता कि कवि का मन-

"मैं भी कहाँ कौन जाने कब
बैठा उस तम की मिट्टी में
उसके संग समाया ।"[2]

अंधेरे में अपने अस्तित्व को मिला देना अकेलेपन से उपजा संकट है। यही अकेलेपन की अनुभूति 'शाम की मटमैली खपरैल' में भी देखी जा सकती है। जो 1940 की ही कविता है। इसी प्रकार 'चिड़ियों-सा लुका-छिपा मेरा मन' तथा 'उठती है मतवाली' में तो इस निराशा और अकेलेपन की लहरें इतनी काली व भयावह हो गई हैं कि नागिन-सी लगने लगी है। एक बंद प्रस्तुत है-

"मैंने कैसी नागन पाली
हर ली जिसने उर की लाली
आधार जिह्वा पल भौंह कपोल
चूम लिए जीवन विष मोल ।"[3]

यह एकांतिक अनुभूति है शमशेर की, जिसे शमशेर ही रच सकते हैं, किन्तु शमशेर के यहाँ प्रकृति के इससे भिन्न चित्र भी हैं।

'सूना-सूना पथ है, उदास झरना' शीर्षक कविता 1939 की है किन्तु वह आज भी ताज़ी लगती है। कारण बाद में, पहले प्रस्तुत है पूरी कविता-

"सूना-सूना पथ है, उदास झरना
एक धूँधली बादल-रेखा पर टिका हुआ
आसमान
जहाँ वह काली युवती
हँसी थी ।"[4]

---

1 उदिता, कमरे में आया, पृ. 34

2 उदिता, कमरे में आया, पृ. 34

3 उदिता, उठती है मतवाली, पृ. 71

4 कुछ और कविताएँ, सूना-सूना पथ है, उदास झरना, पृ. 48

सूना पथ, उदास झरना, एक धूँधली रेखा पर टिके आसमान के बीच काली युवती का हँसना ही जैसे उस शून्यता को भर देता है। 'काली युवती' का सौन्दर्य जैसे उसके हँसते ही फूट पड़ता हो तथा अपनी उपस्थिति दर्ज करा देता है। अतः परमानंद श्रीवास्तव का कथन उचित ही है कि-'शमशेर के प्रकृति-चित्रों को देखें तो वहाँ प्रायः मानवीय उपस्थिति ही प्रकृति को और स्वयं कविता को अर्थमय बनाती है।"[1]

शमशेर पर प्रकृति के अलग-अलग रंग गहरा असर डालते रहे हैं। वे अक्सर रंगों में और गतियों में कई प्राकृतिक रूपों को ढलता हुआ देखते हैं। उनकी विशेषता है कि प्रकृति के दृश्यों का अंकन उस कल्पना के साथ ज़रूर होता है, जो उन्हें देखते हुए मन में कई बार होती है। 'लहरें-शाम-वह नगर' शीर्षक कविता 1942 की है, जिसकी बादलों भारी शाम आज भी पहचानी जा सकती है। इसमें शाम के समय के बादलों के बीच कई तरह की रोशनियाँ आ-जा रही हैं और कई रागों की सृष्टि कर रही हैं। यह बादल बैंगनी-संदली, भूरे, सुर्मयी-सिंदूरी, धुले-साँवले, पीले-गुलाबी से, ऊदे-कारी, नीले गहरे-से मटमैले हैं। रंगों की इतनी बारिक़ व अलग-अलग पहचान से जो बात स्पष्ट होती है वह यह कि सांध्यकालीन आकाश का इतना सुन्दर चित्रण संभवतः अन्य कवि क्यों नहीं कर सके?

"*....भारी*
शांत ढलते नींद से भरे
सपनों से बोझिल धीर
अपने अंत से विज्ञ संतुष्ट ।"[2]

दरअसल जिन सपनों से बोझिल ये बादल हैं वे किसी की स्मृति में हैं। बादलों की स्थिरता ने कवि के मन में एक उदासी पैदा कर दी है। शेष कविता में शाम के रंगीन दृश्य कवि के मन में किसी की याद को ताज़ा कर देते हैं।

शमशेर प्रकृति-प्रेमी कवि के रूप में भी जाने जाते हैं। उनकी प्रारंभिक कविताओं में प्रकृति के विविध चित्र छायावादी कवियों जैसे हैं। 1932 में प्रकाशित 'सहन्-सहन् बहता है वायु' की निम्न पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

---

1 शब्द और मनुष्य, पृ. 79

2 उदिता, लहरें/शाम/वह नगर, पृ. 68

"सहन्-सहन् बहता है वायु
मुक्त उसासों का स्वर भर ।
सम्हल-सम्हल कर झुकती डाल:
आकुल-उर तरु का मर्मर ।"[1]

या फिर-

"कोई अपने सुख-दु:ख भूल
सूने पथ पर राग-विहीन
विस्मृति के विखराता फूल
फिर आया है मूक-मलीन!"[2]

इस कविता में शब्दों का चयन ही नहीं बल्कि पूरा अंदाज़ ही छायावादी प्रभाव लिए हुए है। यद्यपि पेड़-पौधों के बीच से गुज़रती हवा का सुन्दर चित्र खींचा गया है किन्तु 'हेर रही है क्षितिज-दुकूल? 'स्वप्निल श्वेत' छाया कुहरे में ही छिपी हुई है। अत: 'मुक्त उसासों का स्वर' भी रहस्य लोक में चला जाता है। नहीं भूलना चाहिए कि यह शमशेर की प्रारंभिक रचना है।

प्रकृति-सौन्दर्य के जो चित्र शमशेर ने अंकित किये हैं उनमें कवि का चेहरा भी कहीं-कहीं झाँकता है।'आज मई की शाम अकेली' शीर्षक से ही स्पष्ट ही कि कवि भी मई की शाम की तरह अकेला है। इसी प्रकार 'शाम की मटमैली खपरैल' में कवि के अकेलेपन की अभिव्यक्ति हुई है। किन्तु इससे भिन्न 1945 में प्रकाशित 'शाम होने को हुई' की निम्न पंक्तियाँ-

"शाम होने को हुई, लौटे किसान
दूर पेड़ों में बढ़ा खग-रव।
धूल में लिपटा हुआ है आसमान :
शाम होने को हुई, नीरव ।"[3]

नीरवता की ओर बढ़ती शाम का यह चित्र उतना ही लुभावना है जितना कि यह चित्र-

---

1 उदिता, सहन्-सहन् बहता है वायु, पृ. 29

2 उदिता, सहन्-सहन् बहता है वायु, पृ. 29

3 कुछ कविताएँ, शम होने को हुई, पृ. 24

"छिन्न-दल कर कागज़ी विस्मय
सत्य के बल शुक्ल हूँ लूँ मैं!

-शाम निर्धन की न भूलूँ मैं!"[1]

सत्य के बल पर कवि शूल होना चाहता है, साथ ही निर्धन की शाम को याद रखने की कोशिश करता है, शाम के और भी चित्र हैं शमशेर के यहाँ। जिनसे उनकी सौन्दर्य संवेदना का विस्तार दिखाई देता है। 1953 में प्रकाशित 'एक पीली शाम' कविता के इस दृष्टि से देखा जा सकता है-

एक पीली शाम
पतझर का ज़रा अटका हुआ पत्ता
शांत
मेरी भावनाओं में तुम्हारा मुखकमल
कृश म्लान हारा-सा
(कि मैं हूँ वह
मौन दर्पण में तुम्हारे कहीं?)"[2]

पीली शाम का यह पतझर का 'जरा' अटका हुआ पत्ता कविता के उत्तरांश में इस प्रकार आता है-

"अब गिरा अब गिरा वह अटका हुआ आँसू
सांध्य तारक-सा
अतल में ।"[3]

इस कविता के बारे में नंदकिशोर नवल जी का कहना है- "आँसू कवि की नहीं, पत्नी की आँखों में है, वैसे ही अटका हुआ, जैसे वृक्ष की डाल पर पतझर का पीला पत्ता। पत्नी की आँखों से अपनी चिंता में आँसू टपकना शमशेर के लिए एक महान घटना है, किसी शाम का तारा टूटकर पाताल में समाने की तरह, दिशाओं को बिजली की कौंध से भर देने पृथ्वी को हिला देने वाली। राम अपनी पत्नी के लिए रोये थे, तो 'राम की शक्ति-पूजा' में निराला ने

---

1 कुछ कविताएँ, शम होने को हुई, पृ. 25

2 कुछ कविताएँ, एक पीली शाम , पृ. 21

3 कुछ कविताएँ, एक पीली शाम , पृ. 21

उनकी दोनों आँखों से टपकी आँसू की दो बूंदों के बारे में था- 'चमक नभ में ज्यों तारादल' । यहाँ पत्नी के लिए पति रोता है । राम दैवी पात्र थे, अतः कहा उनके आँसू यदि हनुमान को टूटे हुए नक्षत्रों की तरह भास्वर दिखलाई पड़े, तो ये ताज्जुब की बात नहीं । ताज्जुब की बात यह है कि एक मानवी के आँसू शमशेर को 'सांध्य तारक' की तरह लग रहे हैं, उनका टपकना भी नक्षत्र टूटने की तरह । इस भावना की गहराई का अंदाज़ा पाना मुश्किल है । पाठक बस उससे अभिभूत या आक्रान्त रह जाता है; शमशेर की तरह मौन । नक्षत्रपात रात्रि के किसी प्रहर में हो सकता है, यहाँ 'सांध्य तारक' इसलिए कि वक्त शाम का है ।"[1]- स्पष्ट है कि शमशेर के यहाँ शाम भी कई रूपों में आई है । 'संध्या' कविता की यह व्याख्या प्रासंगिक है- "संध्या की 'चुप्पी' और 'नीरवता' का निराला ने भी वर्णन किया है और पन्त ने भी, लेकिन शमशेर के इस वर्णन में जो सूक्ष्मता और आत्मीयता है वह अपूर्व है: 'शांतिः श्री प्राणों की इतनी पास अपने! यही बात हम पन्त की इस पंक्ति 'वस्त्रों के अंत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर' से शमशेर की इन पंक्तियों की तुलना करने पर पाते हैं : 'एक-एक पत्ता सा कत्/ठै रा, संध्या भा में/सुन ता-सा कुछ....किसको/इतने पास अपने!' गेरू के रंग के बादल काले आकाश में छाये हुए हैं/ वे चल रहे हैं, पर इतनी धीरे-धीरे कि लगता है, स्थिर हैं/इस दृश्य का चित्रण शमशेर इस प्रकार करते हैं : 'बादलों के मौन गेरू- पंख 'मौन' क्यों हैं? इसलिय कि उनमें सरसराहट नहीं है/निराला ने 'खजोहरा' में काले-काले बादलों की उपमा हाईकोर्ट के काले-काले लबादे धारण करने वाले वकीलों से दी थी/जैसे वकील वहीं टूटते हैं, जहाँ पैसा होता है, वैसे ही बादल भी वहीं बरसते हैं, जहाँ पहले से पानी भरा होता है/शमशेर को गेरू के रंग वाले बादलों को देखकर गेरुआ लबादा धारण करने वाले सन्यासियों की याद आती है/जैसे सन्यासी दुनिया से कोई मतलब नहीं रखते, वैसे ही बादल भी पृथ्वी पर बरसने के लिए गर्जन-तर्जन नहीं कर रहे, आपस में टकरा नहीं रहे, निर्लिप्त भाव से मंद-मंद आकाश में विचर रहे हैं ।"[2]-ज़ाहिर है शमशेर की शाम पर लिखी कविताएँ प्रकृति संवेदना का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं ।

---

1 शताब्दी की कविता, पृ. 116

2 शब्द जहाँ सक्रिय हैं, पृ. 13

शाम की तरह शमशेर के यहाँ सुबह के भी कई चित्र मिलते हैं। 'सुबह' शीर्षक कविता का यह बंद, जो अंतिम भी है, प्रस्तुत है-

"*जो कि सिकुड़ा हुआ बैठा था, वह पत्थर*
असजग-सा होकर पसरने लगा
आप से आप ।"[1]

सूर्योदय का यह दृश्य उतना ही सुन्दर जितना की 'उषा' का-

"*प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे*
भोर का नभ
राख से लीपा हुआ चौका
(अभी गीला पड़ा है)"[2]

प्रात के नभ को नीले शंख जैसा कहा गया है और शंख जागरण का प्रतीक है। 'भोर का नभ' सुबह की ठंडक व सुगंध लिए हुए है/कविता का आखिरी पद है-

"*और....*
जादू टूटता है इस उषा का अब
सूर्योदय हो रहा है ।"[3]

सूर्योदय के होते ही उषा का जादू टूट रहा है। प्रकृति का यह गतिमय चित्रण उषा की नाटकीयता को रेखांकित करता है। इसी प्रकार दो और कविताओं के बारे में नंदकिशोर नवल के विचार को देखना लाभदायक होगा- "जाड़ों की सुबह के सात-आठ बजे' शीर्षक कविता में शमशेर ने जाड़े की प्रीतिकर धूप का वर्णन किया है जो मनुष्य को लेकर वस्तुओं के अंदर तक पैठ गई है और उन्हें हल्की गर्माहट दे रही है। धूप की ऐसी विस्तृत और सूक्ष्म अनुभूति वाली कविता निश्चय ही हिन्दी में पहले नहीं लिखी गई।"[4]- दूसरी कविता के बारे में नवल जी का विचार है- "अपनी 'शाम-सुबह' शीर्षक कविता में वे कहते हैं: 'उषा..../व्योम उज्जवल स्निग्ध/देवता-सा खड़ा है/स्थिर/मानवी व्योम/कवि केवल

---

1 कुछ कविताएँ, सुबह, पृ. 36

2 कुछ कविताएँ, उषा, पृ. 15

3 कुछ कविताएँ, उषा, पृ. 15

4 शब्द जहाँ सक्रिय हैं, पृ. 13-15

कवि....।' यह आकाश तो दैवी या प्राकृतिक है, मानवी आकाश तो कवि है! इस तरह कवि शमशेर के लिए मूल्यनिरपेक्ष या मूल्यध्वंसक नहीं, बल्कि स्वतंत्रता और सौन्दर्य-जैसे मूल्यों का संवाहक है।"[1]-कहा जा सकता है शमशेर का प्रकृति-सौन्दर्य, स्वतंत्रता के सौन्दर्य से युक्त है।

शमशेर प्रकृति के विभिन्न दृश्यों को पानी आत्मा में रचा-बसा कर फिर अभिव्यक्त करते हैं। रंजना जी का तो कहना है कि- "वे प्रकृति के उन्मुक्त चित्रकार नहीं हैं, क्योंकि प्रकृति उनकी कविताओं में अधिकतर उनके मूड्स के अनुसार अपना सौन्दर्य खोलती हैं।"[2]-सुबह, दोपहर के बाद 'सूर्यास्त' के दृश्य में शमशेर का मूड देखिये-

"*सूर्य मेरी अस्थियों के मौन में डूबा ।*
गुट्ठल जड़ें
प्रस्तरों के सघन पंजर में
मुड़ गईं ।"

" *विकटतम थे अति विकटतम*
विगत के सोपान पर्वत शृंग ।"[3]

शाम को चित्रित करने वाली यह कविता विगत के विकटतम यादों से भरी हैं। बिना किसी हलचल के सूर्य उनकी अस्थियों के मौन में दूब जाता है। अशोक वाजपेयी जी का मानना है कि- "ऊपर जिस तीसरे संसार की बात है उसके लिए ज़रूरी है कि कविता में चीज़ों और हरकतों के रोजमर्रा संसार का गहरा ऐन्द्रिय अहसास हो। ऐसी ऐन्द्रियता शमशेर की लगभग चारित्रिक विशेषता ही है। लगभग अमूर्त लगते दृश्यालेख को अपनी संवेदना के सहज ताप से मूर्त करना-अनोखे संयम और मितव्ययिता के साथ-शमशेर का मिजाज़-जैसा रहा है।"[4]

---

1 शब्द जहाँ सक्रिय हैं, पृ. 13-15

2 कवियों का कवि शमशेर, पृ. 34-35

3 चुका भी नहीं हूँ मैं, सूर्यास्त, पृ. 23

4 कवि कह गया है, पृ. 43

कहना न होगा शमशेर की यह चारित्रिक विशेषता उनके मूड्स को बताती है। शमशेर की प्रकृति संवेदना में 'चाँद' का एक ख़ास रूप सामने आता है। 'चाँद से थोड़ी-सी गप्पें' में एक दस-ग्यारह साल की लड़की से बातचीत है, जो इस प्रकार शुरू होती है-

"*गोल हैं खूब मगर*
आप तिरछे नज़र आते हैं ज़रा ।
आप पहने हुए हैं कुल आकाश
तारों-जड़ा
सिर्फ मुँह खोले हुए हैं अपना
गोरा-चिट्टा ।
गोल-मटोल,
अपनी पोशाक को फैलाए हुआ चारों सिम्त ।
आप कुछ तिरछे नज़र आते हैं जाने कैसे
-खूब हैं गोकि!"[1]

इस कविता में प्रेम का एक अन्य स्तर उदघाटित करती हुई रंजना जी लिखती हैं- 'यह छोटी-सी लड़की रोज़ चाँद को देखती है और धीरे-धीरे चाँद की ओर आकृष्ट होती जाती है। बातचीत वह लड़की स्वयं कर रही है, अतः पूरी कविता का टोन वही है, जो उस लड़की का हो सकता है। लड़की चाँद को अपनी मानसिकता से देखती है, उसे आश्चर्य है चाँद के रूप पर, पोशाक पर और उसके घटने-बढ़ने पर। उसे लगता है की चाँद भी हमारी ही तरह है, पर वह केवल अपना मुँह खोले रहता है, बाकी सारी देह अपनी पोशाक में छिपाए रखता है।"[2]- किन्तु इससे भिन्न रात में चाँद का गतिशील रूप भी शमशेर की प्रकृति-संवेदना को दर्शाता है।'पूर्णिमा का चाँद' तो एक पूरी सीरियल पेंटिग ही बनाता है-

"*चाँद निकला बादलों से पूर्णिमा का ।*
गल रहा है आसमान ।
एक दरिया उमड़कर पीले गुलाबों का
चूमता है बादलों को झिलमिलाते

---

1 कुछ और कविताएँ, चाँद से थोड़ी-सी गप्पें, पृ. 28

2 कवियों का कवि शमशेर, पृ. 25

स्वप्न जैसे पाँव ।''[1]

इस छोटी-सी कविता का पूरा का पूरा दृश्य शमशेर के प्रकृति सौन्दर्य की विलक्षणता को दर्शाता है । बादलों से निकलते पूर्णिमा का चाँद का दृश्य इसलिए अनोखा है कि उसके निकलते ही आसमान धीरे-धीरे मद्धिम पड़ रहा है, और उसके पीले गुलाबों-सी रोशनी झिलमिलाते बादलों को छूने का प्रयास कर रही है । अतः चाँद के ये दोनों दृश्य शमशेर के प्रकृति-प्रेम को स्पष्ट करते हैं ।

शमशेर के प्रकृति-वर्णन में जिन कविताओं का शुमार है उनमें से एक 'कत्थई गुलाब' का भी नाम लिया जा सकता है, 'कत्थई गुलाब' का यह अंश-

''कत्थई गुलाब
दबाए हुए है
नर्म-नर्म
केसरिया साँवलापन मानो
शाम की
अंगूरी रेशम की झलक,
कोमल
कोहरिल
बिजलियाँ-सी
लहराए हुए है''[2]

इस कविता के बारे में ज्योतिष जोशी जी का ख्याल है कि- ''कत्थई गुलाब' के इस भव्य और रम्य वातावरण में भला किसे चित्रकला का दर्शन न होगा । शब्द ऐसे चुने मानो गुलशन की परिक्रमा कर अपनी आँखों में पहले उतारा, फिर सुबह से शाम तक उनके आसपास अपने को समो दिया-तब बनी वह कविता जो एक ही साथ हमें नृत्य की थिरकन, संगीत-सा माधुर्य और चित्र-सी दर्शनीयता दे दे । कविता तो बहुत लिखी गईं पर क्या किसी ने अंगूरी रेशम की झलक शाम में या गुलाब में देखी है? हम रोज़ जिसे देखते हैं-बिसार देते हैं । वे अपनी पूरी ताज़गी के साथ शमशेर के यहाँ आते हैं-कवि शमशेर का यह भी मतलब है कि उनका संसार हमरे अपने संसार का भूला-भटका संसार है जिसे हम ख्याल बना चुके हैं,

---

1 कुछ कविताएँ, पूर्णिमा का चाँद, पृ. 28

2 इतने पास अपने, कत्थई गुलाब, पृ. 17

कभी-कभी जिसे हम सपना भी बना लेते हैं। लेकिन शमशेर उसे उतार लाते हैं कागजों के बहाने हमारी स्मृति में। हिन्दी की आधुनिक कविता में शमशेर इसलिए भी अकेले पद के अधिकारी हैं।"[1]-कला की दृष्टि से जोशी जी का यह कथन उचित ही है तथा प्रकृति चित्रण की दृष्टि से भी। किन्तु इस कविता में प्रेमिका के सौन्दर्य के साथ ही प्रेम की तड़प भी मौजूद है। जो निम्न पंक्तियों में ध्वनित होती है-

"*ओ प्रेम की*
असंभव सरलते
सदैव सदैव!"

यह संबोधन कत्थई गुलाब के लिए उतना ही मौजू है जितना कि प्रेमिका के लिए। यों भी 'तन का छंद' प्रेमिका के शरीर तक सीमित न रहकर 'गत स्पर्श' की लय में मिल जाता है। ऋतुओं, पर्वों आदि के चित्र शमशेर की कविताओं में कम ही मिलते हैं। सावन पर लिखा यह 'गीत' ने केवल अपनी गीतात्मकता के लिहाज़ से वरन् दृश्यालेख की दृष्टि से भी मन को भिगा देता है-

"*सावन की उनहार*
आँगन-पार ।
मधु बरसे, हुन बरसे,
बरसे – स्वाति धार
आँगन-पार ।
सावन की उनहार"[2]

सावन की उनहार-से महसूस होता है कि पानी अभी भी बरस रहा है। स्वाति की धारा मन को भिगो देती है। इसी प्रकार 'वसंत आया' का यह चित्र-

"*फिर बाल वसंत आया, फिर लाल वसंत आया*
फिर पीले गुलाबों का, रसभीने गुलाबों का
आया वसंत
सौ चाँद से मसले हुए जोबन पर
श्रृंगार की बजती हुई रागिनियाँ

---

1 शमशेर की कविता का यथार्थ(लेख), आलोचना की छवियाँ , पृ. 30

2 कुछ कविताएँ, गीत, पृ. 52

रसराज मधुपुरी की गलियों में
सौ नूरजहाएँ, सौ पद्मिनियाँ

फिर लायीं वसंत
-उन्मत्त वसंत आया ।"[1]

वसंत कि पहचान इन नायिकाओं से है। वसंत लाने वाली ये ही हैं। कह सकते हैं कि वसंत की पूरी मादकता इन नारियों के बिना अधूरी है। कवि के लिए बसंत जिस्मानी है, जो पूरी मादकता के साथ आता है। इन दोनों कविताओं से भिन्न शमशेर ने ईद और होली जैसे त्योहारों पर भी लिखा है/ 'होली: रंग और दिशाएँ' एक एब्सट्रेक्ट पेंटिग है। इस कविता के बारे में रंजना जी का कहना है- "उनकी होली, उनकी एकदम निजी है। उसके रंगों में डूबना उनसे खेलना हर किसी के बस की बात नहीं है। उनकी होली में गुलाल रंगी सुबहें और विविधवर्णी सड़के हैं, पर साथ में समय और स्थल के रंग भी हैं, जो सघन हैं, तरल हैं और वायवीय भी हैं, इस अनंत बहते समय के छोटे-छोटे प्रहरों में बनते टुकड़े हैं, उनके रंग हैं। पर उसमें एक बात वे कहते हैं-

"*पर्व*
प्रकाश है
अपना"

जो कुछ है, वर्तमान में है और है इन उत्सवों में, यही वह सब कुछ है जो, जो हमें जीना है; पाना है-

"*एक ही ऋतु हम*
जी सकेंगे
एक ही सील बर्फ की
धो सकेंगे
* * *
यहीं सब कुछ है ।

---

[1] कुछ कविताएँ, वसंत आया, पृ. 53

इसी ऋतु में
इसी युग में
इसी

हम
में ।"

उनके वसंत का मद, उनकी होली के रंग और इसी तरह उनके सावन की घटा और आर्द्रता, एक विशेष रंग में लिपटे हैं। जैसे होली की बात है तभी प्रकृति वर्णन है, वरना तो सब एब्सट्रेक्ट है, क्षण के उल्लास के महत्व की बात है।"[1]-स्पष्ट है शमशेर के यहाँ प्रकृति संवेदना के ये रंग भी हैं।

'सागर-तट' शमशेर की जानी-पहचानी कविता है। इस कविता में प्रकृति के संघर्ष को चित्रित किया गया है। कविता का आरम्भ होता है लहरों और चट्टान के बीच संघर्ष से-

"*यह समंदर की पछाड़*
तोड़ती है हाड़ तट का-
अति कठोर पहाड़ ।"[2]

अब जिस हर्षोल्लास का चित्र है, वह देखने लायक है-

"*पी गया हूँ दृश्य वर्षा का:*
हर्ष बादल का
हृदय में भरकर हुआ हूँ हवा-सा हल्का:
धुन रही थीं सर
व्यर्थ व्याकुल मत्त लहरें
वहीं आ-आकर
जहाँ था मैं खड़ा
मौन :
समय के आघात से पोली, खड़ी दीवारें
जिस तरह घहरें

---

1 कवियों का कवि शमशेर, पृ. 37-38

2 कुछ कविताएँ, सागर-तट, पृ. 29

एक के बाद एक, सहसा ।"[1]

इस कविता के बारे में सृजन-शिल्पी अपने एक लेख 'शमशेरियत और हिन्दी कविता' में लिखते हैं-"इस कविता में संघर्षशील ऊर्जा तीव्र है, 'एक नीला आइना बेठोस' के ठीक विपरीत ध्रुव पर स्थित, जहाँ अवचेतन का शांत कल्पनालोक पूरे परिदृश्य पर छाया हुआ है बिखरी हुई तरल चांदनी की भाँति, जबकी चेतन की संघर्षशील ऊर्जा एक 'कन किरन' बनकर 'अखिल की शट-सी' रह गई है। 'समय के आघात से पोली' खड़ी दीवारों के 'एक के बाद एक, सहसा' घहरने की अंतर्ध्वनि 1949 में 'उदिता' की अप्रकाशित भूमिका में साफ सुनी देती है-अर्जुन, जिनको तू अपने सामने गर्जन करता हुआ देखता है, उसका नाश तो पहले ही हो चुका है। आँखे खोलकर देख, इतिहास कहाँ से कहाँ पहुँच चुका है। दुनिया भर में एक समान, सुखी मज़दूर-किसान का राज है!'-बादल का हर्ष हृदय में भरकर हवा-सा हल्का होने वाले आह्लाद की भाँति है जब 'आज मैं ऊपर, आसमाँ नीचे' की भाव-तरंग से व्यक्ति आप्लावित रहता है। इतनी बड़ी खुशी क्या नितांत व्यक्तिपरक हो सकती है !"[2]-स्पष्ट है कि पूरी कविता में संघर्ष की निरंतरता व्याप्त है।

'बैल' शीर्षक कविता शमशेर की रचना-यात्रा के अंतिम दौर में लिखी गयी है। हालाँकि यह कविता 'बैल' को विषय बनाकर लिखी गयी है, किन्तु इसमें शमशेर के संघर्ष को भी देखा जा सकता है। कविता शुरू होती है इन पंक्तियों से-

"मैं वह गुट्ठल काली कड़ी बुबवाला बैल हूँ
जो अकेले धीरे-धीरे छः मील खींचकर ले जाते हुए
ठेले पर ऊपर तक लादा हुआ माल
स्टेशन से दूर गोदाम तक
चुपचाप धीरे-धीरे, आँखें बाहर को निकली हुईं,
त्यौरी चढ़ी हुई, काँधे ज़ोर लगाते हुए
सीना और छाती आगे को झुककर, जोर लगाते हुए
राने भरी हुईं गर्म पसीने से तर, मगर

---

1 कुछ कविताएँ, सागर-तट, पृ. 29

2 http://www.srijangatha.com/? pagename= mulyankan1- Feb 2k7.

ज़ोर लगाती हुई ”[1]

कविता से ही ध्वनित होता है कि यह आत्मकथात्मक है। बैल के संघर्ष के साथ-साथ श्रमजीवी व्यक्ति के संघर्ष का दृश्य धीरे-धीरे खुलता चला जाता है। कवि देखता है कि बैल एक प्रकार से शान्ति का अभ्यस्त हो गया है-

“*गंभीर, प्राणों में उठती हुई शांति....*
आकाश के तारे, कुत्तों का पागल शोर
जो इस शान्ति को बढ़ाता ही है
पहरुओं की ठक-ठक, सीटियाँ...
और कहीं दूर किसी गाय के गले की घंटियाँ
कटड़ों और बच्चों की
हवा में
मासूम कच्ची-सी खुशबू, और घोड़ों का
खोखले गर्व से और बिला किसी वजह, बार-बार
टापें ज़मीन पर मारना
यह सब जो उस शान्ति को और
ठोस और स्थायी-सा बनाते हैं ।”[2]

इस कविता के बारे में एकांत श्रीवास्तव का कहना है- “यह बैल उस शान्ति का अभ्यस्त हो गया है जो गंभीर है और प्राणों से उठती है। बैल प्रकृति से शांतिप्रिय पशु है, सहनशील भी। यह शांतिप्रियता यथास्थितिवाद को बनाए रखने में सहायता करती है और सहनशीलता उस अन्याय और शोषण का आदि बनाती है जिसे वह जानता और समझता है। शायद वह अकेले होने की नियति से खूब परिचित है जिसके चलते किसी भी प्रकार का विरोध निरर्थक निष्प्रभावी ही साबित होगा। एक बैल की नियति दूसरे बैल की नियति भी है। एक मनुष्य की पीड़ा, दूसरे मनुष्य की पीड़ा भी है लेकिन यह नियति ‘नियतियों’ में अभी नहीं बदली है। यह पीड़ा स्वतन्त्र है और पृथक। एक वचन में यह केवल पीड़ा है-अन्य मनुष्यों की पीड़ाओं से अभी यह दूर है। यह अकेलापन और पृथकता-दोनों मिलकर मनुष्य को कमज़ोर बनाते हैं। उसके गुस्से को रचनात्मक परिणति देने में ये गतिरोध का काम करते हैं। एक श्रमजीवी

---

1 प्रतिनिधि कविताएँ, बैल, पृ. 169

2 प्रतिनिधि कविताएँ, बैल, पृ. 169-170

मनुष्य बैल नहीं लेकिन बैल बनने और बैल जैसा जीवन जीने के लिए वह बाध्य है। यह विडंबना है की यह उसी समाज का मनुष्य है जिस समाज की आँखे नयी सदी के आलोक में चौंधियाई हुई हैं।...बैल हो या मनुष्य-जब तक भीतर प्राणों से उठती हुई यह ठोस और स्थायी सी दिखने वाली शांति एक बेचैनी में नहीं बदलती तब तक किसी भी प्रकार का परिवर्तन असंभव है। तब तक भूख के शस्त्र से रोज़ एक बैल का वध होता रहेगा।"[1]-शायद इसीलिए शिवमंगल सिंह ने कहा था कि-"शमशेर की कविता के मूल में कविता की अप्रतिहत जिजीविषा है। उनकी अव्याहत कल्पनाओं के केन्द्र में मनुष्य है, अपनी समस्त शहज़ोरियों और कमज़ोरियों के साथ अनेक रंग और रेखाओं से उन्होंने अपनी कविता में आदमी की मुकम्मल तस्वीर प्रस्तुत करने का यत्न किया है।...शमशेर की प्रासंगिकता उनकी सूक्ष्तम पारदर्शी अभिव्यक्ति में उतनी नहीं जितनी सीधे-सीधे सहज ऊर्जस्वी व्यंजनाओं में है।"[2]- ये व्यंजनाओं उनकी प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में भी हैं।

शमशेर की राजनीतिक या आंदोलनधर्मी कविताओं के बारे में मुक्तिबोध की स्पष्ट राय है कि- "मैं यहाँ शमशेर की उन कविताओं को नहीं भूल सकता जिन्हें हम व्यापक अर्थ में सामजिक और संकुचित अर्थ में राजनैतिक, कह सकते हैं। मनोवैज्ञानिक वस्तुवादी कवि जब सामजिक भावनाओं तथा विश्व-मैत्री की संवेदनाओं से आच्छन्न होकर मानचित्र प्रस्तुत करता है, तब वह उसी प्रकार अनूठा और अद्वितीय हो उठता है, जैसे कि किसी क्षेत्र में भिन्न तथा अन्य कवि कदापि नहीं। 'शान्ति' पर लिखी शमशेर की कविता क्लासिकल ऊँचाइयों की उपलब्धि कर चुकी है। इससे यह सिद्ध होता है कि शमशेर की वास्तवोन्मुख दृष्टि और वास्तव-प्राप्त संवेदनाएं और भी अधिक साहित्यिक उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकती हैं। सच तो यह है कि शमशेर के पास जादुई कीमियागीरी नहीं है, वास्तव का संवेदनात्मक ग्रहण है। इन वास्तव संवेदनाओं के सूक्ष्म की पकड़ इतनी जबर्दस्त है कि उनकी शक्ति को देखते हुए यह अपेक्षा की जानी चाहिए कि शमशेर आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय प्रगतिशील चेतना के और भी उत्तमोत्तम भाव-प्रसग प्रस्तुत करेंगे। शमशेर का काव्य एकदम खरा है, अपने विशेष गुणों के कारण मौलिक है, अपने शिल्प के कारण अद्वितीय है, और ये

---

1 कविता का आत्मपक्ष, पृ. 169-70

2 हँस, अंक-12, जुलाई 1993, पृ. 18

ही बातें उन्हें श्रेष्ठ कवि सिद्ध करती हैं।"[1]-इस लंबे उद्धरण में मुक्तिबोध को किसी प्रकार का संदेह नहीं है। बल्कि शमशेर की आगे की कविताओं के लिए एक उम्मीद प्रकट की है। बावजूद इसके शमशेर ने अपनी कविताओं के बारे में जो संदेह प्रकट किया है, वह इस प्रकार है- "इन प्रगतिशील रचनाओं के बारे में मेरे दिल में हमेशा संदेह रहा कि ये कविता के रूप में अच्छी नहीं बन पड़ी हैं शायद।"[2] और मुक्तिबोध से अपनी तुलना करने पर वह कहते हैं- 'मेरी दुरुहता को आप पार भी कर लेती हैं तो ज़्यादा कुछ पाएंगी नहीं। पर मुक्तिबोध को आप पढ़िये। आवश्य पढ़िये। उनकी दुरुहता को पार करेंगी तो you will enrich your life, your experiences आप ज़रूर पढ़िये उनको। उनकी कविता जीवन के बहुत करीब है। उनके images बहुत concrete हैं। Flesh and blood के। उनकी कविता में Social Awareness बहुत है। वे उपयोगी हैं-सामाजिक दृष्टिकोण से। मेरी कविताएँ बहुत वायवीय हैं। शायद उसमें diction और Art है तो बहुत अखरता है। मेरे images बहुत ही रियल और felt हैं, पर उतने या कहें बिलकुल ठोस नहीं हैं।"[3]- इन दोनों कथनांशों को शमशेर की विनम्रता कहा जाये, या ईमानदार वक्तव्य, यह बिना तथाकथित आंदोलनधर्मी कविताओं को देखे नहीं कहा जा सकता।

जब शमशेर रचना-कर्म में प्रवृत्त हुए उस समय देश में स्वाधीनता-संग्राम चल रहा था। उस समय सम्पूर्ण भारत वर्ष अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध खड़ा था। जनता में जो स्वतंत्रता की चाह थी, उसे उस दौर के कवियों ने वाणी दी। राष्ट्रीय प्रेम व सौन्दर्य के साहित्य ने जन-जन में नया उत्साह जगाया। निराला, प्रसाद, पन्त आदि ने तथा इसके पहले मैथिलीशरण, दिनकर आदि ने राष्ट्रीय आंदोलन की वाणी को जन-जन तक पहुँचाया। शमशेर ने भी 'मैं भारत गुण-गौरव गाता' लिखा-

"मैं भारत गुण-गौरव गाता!
श्रद्धा से उसके कण-कण को

---

1 शमशेर मेरी दृष्टि में, गजानन मुक्तिबोध, पृ. 94

2 साहित्य विनोद, (इतने पास अपने; शमशेर से नेमिचन्द्र जैन और मलयज की बातचीत), पृ. 26

3 कवियों का कवि शमशेर, पृ. 211

उन्नत माथ नवाता ।"[1]

भारत के कौन-से गुण हैं जिससे शमशेर प्रभावित हैं-

"*प्रथम स्वप्न-सा आदि पुरातन,*
नव आशाओं से नवीनतम,
प्राणाहुतियों से युग-युग की
चिर अजेय बलदाता!"[2]

किन्तु जो विशेषतायें सर्वविदित हैं वे निम्न हैं-

"*आर्य शौरी धृति, बौद्ध शान्ति द्युति,*
यवन कला समिति, प्राच्य कर्म रति,
अमर अमित प्रतिभायुत भारत
चिर रहस्य, चिर ज्ञाता!"[3]

भारत का वह सूत्र जो संसार को एक दे-

"*वह भविष्य का प्रेम-सूत है,*
इतिहासों का मर्म पूत है,
अखिल राष्ट्र का श्रम, संयम, तपः
कर्मजयी, युग त्राता ।"[4]

ऐसा है हमारा भारत। जिसके बारे में अपूर्वानंद लिखते हैं- इस राष्ट्र-वेदना में कोई नई ध्वनि नहीं सुनाई पड़ती। ध्यान देने योग्य है तो सिर्फ यह चीज़ कि भारत को सारी दुनिया से न्यारा दिखने की कोशिश नहीं है। इस कविता में राष्ट्रवादी आक्रामकता भी नहीं है। ऐसे भारत को माथा झुकाया है, जो भविष्य का प्रेम-सूत्र है। वैसे राष्ट्र को लेकर आक्रामकता या उत्तेजना शमशेर में प्रायः नहीं दिखलाई देती। 'इक़बाल' की कविता' शीर्षक लेख में उन्होंने समर्थनपूर्वक कहा है कि पश्चिमी आदर्शों से अनुप्राणित देशभक्ति भी जीवन की सच्ची महान प्रेरणाओं को एक संकुचित सीमा में परतंत्र कर देती है। क्या इसी धारणा की वजह से शमशेर

---

1 उदिता, मैं भारत गुण-गौरव गाता, पृ. 17

2 उदिता, मैं भारत गुण-गौरव गाता, पृ. 17

3 उदिता, मैं भारत गुण-गौरव गाता, पृ. 17

4 उदिता, मैं भारत गुण-गौरव गाता, पृ. 17

के यहाँ उग्र राष्ट्रभक्ति के उदबोधनात्मक गीत नहीं मिलते?"[1]- जिस देश में लोकतंत्र हो वह संकुचित नहीं हो सकता।

जिस कवि को अपने मुल्क से इतना प्रेम हो वह यह तो कहेगा ही कि-

"*कहीं सर्द खूँ में तड़पती है बिजली*
ज़माने का रद्दो-बदल कोई लाए"[2]

'ग़ज़ल' के इस शेर में कवि ज़माने का रद्दो-बदल चाहता है। पर क्यूँ? 'फिर वह एक हिलोर उठी' शीर्षक कविता से इस बात के कुछ संकेत मिलते हैं-

"*वह मज़दूर किसानों के स्वर कठिन हठी!*
कवि हे, उनमें अपना हृदय मिलाओ!
उनके मिट्टी के तन में है अधिक आग,
है अधिक ताप:
उसमें कवि हे
अपने विरह-मिलन के पाप जलाओ!
काट बुर्जूआ भावों की गुमटी को-
गाओ!"[3]

कवि मज़दूर किसानों के स्वर में अपना स्वर मिलाना चाहता है। उनके मिट्टी के तन से ऊर्जा प्राप्त करना चाहता है। लेकिन क्या विरह-मिलन के पाप को कवि जला पाया है या बुर्जूआ भावों की गुमटी को कितना काटते हुए गा पाया है, यह आगे की कविताओं से स्पष्ट होगा।

जो कवि अपने को 'चुका हुआ' नहीं मानता उसमें जीवन-संघर्ष के कुछ न कुछ तत्त्व भी होंगे। इन तत्त्वों की परख के लिए प्रस्तुत है 'लेकर सीधा नारा' शीर्षक कविता की निम्न पंक्तियाँ-

"*मैं समाज तो नहीं; न मैं कुल*
जीवन;
कण-समूह में हूँ मैं केवल
एक कण ।

---

1 सुन्दर का स्वप्न, पृ. 203

2 प्रतिनिधि कविताएँ, ग़ज़ल, पृ. 11

3 बात बोलेगी, फिर एक हिलोर उठी, पृ. 11

-कौन सहारा!
मेरा कौन सहारा!"[1]

सहारे की बेचैनी स्पष्ट देखी जा सकती है। इस कविता का मूल्याँकन करते हुए प्रो. सुवास कुमार लिखते हैं- "शमशेर की संवेदनशीलता उन्हें अकेलेपन की उदासी, व्यथा तथा असहायता को अपनी करुणा-दृष्टि देने पर विवश कर देती है। कवि सिर्फ व्यंग्य और कटुक्तियों के द्वारा ही अकेलेपन की वास्तविकता को अप्रासंगिक नहीं कर देता वरन् वह एक गहरी सहानुभूति से भरकर अकेलेपन में तैरता-डूबता उतराता भी है।"[2]-क्या अब भी व्यक्ति और समाज को लेकर किसी प्रकार का संदेह रह जाता है! संवेदनशील कवि शमशेर ने रघुवीर सहाय को लिखे एक पत्र में कहा था- "इसी पत्र में उन्होंने मुझे सीख दी थी: 'तीन चीज़ें हमारी ज़िंदगी में बहुत ज़रूरी हैं बेहद, प्राणवायु, मार्क्सिज़्म और अपनी वह शक्ल जो हम आवाम में देखते हैं। अच्छी तंदुरुस्त साँस से अच्छी शायरी पैदा होती है और अच्छी शायरी में हम अच्छे इंसान को पाते हैं जिसके नक्श शायर जनता में ढूँढ़ता है।"[3]- ज़ाहिर है शमशेर के कथन जैसी कविता भी होनी चाहिए।

1941 में ही शमशेर उपर्युक्त तीनों चीज़ों को एक शक्ल देते हैं। उनका 'हुँकार-टंकार', 'जीवन की कमान' शीर्षक कविता में देखा जा सकता है-

"*ढीली इस जीवन की कमान*
कसनी है:
छूटेंगे जिस पर कड़े प्राण के
तीर, जो कि
भेदेंगे
सातों आसमान।"[4]

कवि का यह उत्साह आगे भी है-

"*जब जन-बल का सागर*

---

1 कुछ कविताएँ, लेकर सीधा नारा, पृ. 17

2 आधुनिक हिन्दी कविता(आत्म निर्वासन और अकेलेपन का सन्दर्भ), पृ. 276

3 अर्थात, पृ. 240

4 बात बोलेगी, जीवन की कमान, पृ. 13

दहाड़ कर उट्ठेगा,
करता विचूर्ण फासिस्ट हाड़ ।
जनता के बल का महाबाण
शक्तिस्फुलिंग,
जो मध्य-युगों का परित्राण
कर छूटेगा
बन नव-युग का जलता प्रमाण ।"[1]

'लेकर सीधा नारा' में कवि जिस आस्था की जाँच-परख करता है वही 'जीवन की कमान' में तीर और महाबाण के द्वारा फासिस्ट हाड़ को विचूर्ण भी करता है। अतः रघुवीर सहाय द्वारा 'बात बोलेगी' की समीक्षा 'मुझको मिलते हैं अदीब' का यह अंश देखने लायक है- "'बात बोलेगी' में 'लेकर सीधा नारा' शमशेर के सच्चे कवि हृदय की अनेक पहचान कविताओं में से एक है। 'जीवन की कमान' में जनबल के सागर के दहाड़कर उठने और फासिस्ट हाड़ को विचूर्ण करने तथा जनता के बल के महाबाण शक्ति स्फुलिंग के मध्ययुगों का परित्राण कर छूटने और नवयुग के जलता प्रमाण बनने की आशा है। तीस वर्ष की वय में और 1941 की अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के सन्दर्भ में लिखी कविता में यह आशा अतिरंजित हो सकती थी पर इसका खरापन निर्विवाद है।"[2]- स्पष्ट है कि शमशेर ने अपने खरेपन पर ही अधिक विश्वास किया है।

जो बात शमशेर की नज़्म-निगारी में है वही बात कविताओं में भी है। लेकिन मलयज जी का कहना है- "आज के साहित्य चिंतन व रचना-कर्म को समझने-समझाने में 'शिल्प' से आरम्भ करना कहाँ तक सहायक या असहायक है उस बात को परे कर दें तो देखेंगे कि शमशेर जी का शिल्प अपेक्षाकृत वस्तुपरक पक्ष से काव्य को देखने-दिखाने के पीछे अपनी भीतरी जख़्म को उघाड़कर दूसरों की खामख्वाह दया अर्जित करने की भावना का विरोध ही है। या कहें कि ऐसा उनके कविगत आत्म-स्वाभिमान के कारण है।"[3]-पर क्या वास्तव में

---

1 बात बोलेगी, जीवन की कमान, पृ. 13

2 यथार्थ यथास्थिति नहीं, पृ. 133

3 मलयज की डायरी, भाग-डॉ, पृ. 382

शमशेर के बारे में वस्तुस्थिति ऐसी ही है? इस लिहाज़ से शमशेर के 'कुछ मुक्तक' से एक मुक्तक द्रष्टव्य हो सकता है-

"*यह सलामी दोस्तों को है, मगर*
मुट्ठियाँ तनती हैं दुश्मन के लिए!"[1]

दो और मुक्तकों को देखना भी उचित रहेगा-

"*नाज पकने पर खुले आकाश से*
बिजलियाँ गिरती हैं निर्धन के लिए ।"[2]

"*संकुचित है आज जीवन का हृदय,*
व्यक्ति-मन रोता है जन-मन के लिए ।"[3]

क्या इन मुक्तकों को पढ़कर भी कहा जा सकता है कि शमशेर 'अपने भीतरी जख़्म को उघाड़कर दूसरों की खामख्वाह दया अर्जित करने की भावना का विरोध ही' करते हैं। इसलिए पुनः रघुवीर सहाय जी की 'बात बोलेगी' समीक्षा का एक अंश(छोटा सा) देखा जा सकता है। रघुवीर जी लिखते हैं- "बात बोलेगी की कविताओं को सामाजिक राजनैतिक बताया गया है। ऐसी सतही पहचान की बदौलत शमशेर के पूरे व्यक्तित्व को समझने की कोशिश बचकानी हो जाती हैं। 'चुका भी हूँ मैं नहीं', 'ओ युग आ', 'चीज़ यानी थिंग' और 'भाषा' जैसे कविताएँ राजनैतिक सामाजिक नहीं हैं तो क्या हैं? और व्यक्तिगत नहीं है तो क्यों नहीं?"[4]-क्या रघुवीर जी के इन सवालों से समीक्षक वाकिफ रहे हैं? अगर शमशेर होते तो शायद यही कहते-

"*मुझको मिलते हैं अदीब और कलाकार बहुत*
लेकिन इंसान के दर्शन हैं मुहाल"

संभवतः शमशेर को इंसान भी पाठक के रूप में मिलते रहेंगे।

शमशेर का ज़ोर हमेशा अपनी 'बात' पर रहा है। तभी तो उनका कहना है-

---

1 कुछ और कविताएँ, पृ. 16

2 कुछ और कविताएँ, कुछ मुक्तक, पृ. 16

3 कुछ और कविताएँ, कुछ मुक्तक, पृ. 16

4 यथार्थ यथास्थिति नहीं, पृ. 132

"बात बोलेगी
हम नहीं ।
भेद खोलेगी
बात ही ।"[1]

कैसी है यह बोलती हुई बात-

"दैन्य दानव; काल
भीषण; क्रूर
स्थिति; कंगाल
बुद्धि; घर मजूर ।"[2]

रंजना जी का इस पर कहना है- "काल की गति, सत्य की दिशा में होती है। अगर यही हमारा सत्य है, तो खा सुखकर है, एक प्रश्न है। वास्तव में हमारे दु:ख एक है, उसके कारण अनेक हैं। हमारी मूल समस्या है, स्वतन्त्र होने की-सभी स्तरों पर। आर्थिक स्वतंत्रता क्रूर सामजिक स्थितियों से, जो हमारे मांस को घेरे हुए हैं, चिंतन की दरिद्रता से मुक्ति-अगर हम इसे प्राप्त नहीं करते तो सही अर्थों में स्वतंत्रता नहीं मिल सकती। इसके लिए एकता अनिवार्य है, इस एकता की दिशा में हमें बढ़ना है। जिस स्थिति का निर्देश किया है वह जनता की स्थिति है, और जनता है 'मजूर वर्ग'।"[3]- चिंतन की दरिद्रता तो अभी भी बरकरार है, व्यक्ति और जनता से काटकर क्या कोई चिंतन हो सकता है। य'शाम है' एक ऐसी ही 'ग्वालियर की एक खूनी शाम का भाव-चित्र; जो शमशेर के चिंतन में चार-चाँद लगाता है। कविता आरम्भ होती है-

"य' शाम है
की आसमान खेत है पके हुए अनाज का ।
लपक उठीं लहू-भरी दराँतियाँ
-कि आग है :
धुआँ-धुआँ
सुलग रहा

---

1 दूसरा सप्तक, बात बोलेगी, पृ. 81

2 दूसरा सप्तक, बात बोलेगी, पृ. 81

3 कवियों का कवि शमशेर, पृ. 21

ग्वालियर के मजूर का हृदय ।"[1]

इस कविता के प्रारंभ में शमशेर ने जो एक छोटी-सी टिप्पणी दी है, वह इस प्रकार है- "ग्वालियर की एक खूनी शाम का भाव-चित्र। लाल झंडे, जिन पर रोटियों तंगी हैं, लिए हुए मजदूरों का जुलूस। उनको रोटियों के बदले मानव-शोषक शैतानों ने-ग्वालियर की सामन्ती रियासती सरकार ने-गोलियाँ खिलाई। उसी दिन-12 जनवरी, 1944- की एक स्वर-स्मृति।"- इस कविता के बारे में परमानन्द श्रीवास्तव जी का संक्षिप्त नोट इस प्रकार है- "संघर्ष-चेतना रोमांटिक अनुभूति के साथ-साथ शमशेर के काव्य-जीवन में अभिव्यक्ति पाती रही है। य' शाम है' ग्वालियर की एक खूनी शाम का चित्र है। इस यथातथ्य वर्णन में भी कुछ ऐसा ज़रूर जुड़ गया है कि कविता सादे बयान के बावजूद गहरा प्रभाव छोड़ पाती है। सीधा बयान भी शमशेर की दृष्टि में कविता के बाहर की चीज़ नहीं, यदि खरी अनुभूति के साथ आवेग को संयमित करने का बल हो। आवेग और संयम जहाँ एक साथ हों वहीं य'शाम है'- जैसी कविता लिखी जा सकती है।"[2]- आवेग और संयम का मेल ही इस कविता में अहमियत रखता है।

शमशेर की वे कविताएँ जो प्राकृतिक आपदाओं पर लिखी गयी हैं, कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। 'अकाल' 1943 की रचना है, जिसकी कुछ पंक्तियाँ यों हैं-

"*अपनी शत्रु भयविहीन सड़कों और गलियों में-*
जहाँ कुत्तों का जीवन भी दीर्घतर लगता है,
स्पृहनीय, केवल
अपना ही दयनीय ।"[3]

जो लोग इस कविता पर आपत्ति दर्ज करते रहे हैं, उनके लिए रघुवीर सहाय का यह कथन ध्यान देने योग्य है- "'दुःख नहीं मिटा' और 'अकाल' जो केवल दो वर्ष बाद लिखी गयी उस समय के घोषित प्रगतिशील साहित्य की सरलीकृत आशाओं से कहीं ज़्यादा अलग एक गहरे कवि हृदय का परिचय देती है। इसी गहराई को शमशेर के नाम के साथ कैसे भी

---

1 कुछ कविताएँ, य'शाम है, पृ. 32

2 शब्द और मनुष्य, पृ. 75

3 बात बोलेगी, अकाल, पृ. 21

जुड़ने की इच्छा से बहुत से शब्द खर्च करके 'ऐन्द्रजालिक' आदि कहा जाता रहा है।"[1]- रघुवीर सहाय के इस कथन के परिप्रेक्ष्य में 'बाढ़ 1948' कविता भी देखी जा सकती है। किन्तु कुछ पंक्तियों को ही प्रस्तुत किया जा रहा है ताकि शमशेर की रूह से अलग भी कुछ चित्र सामने आयें-

"पानी-सी ज़िन्दगियाँ, आँख खोलते न खोलते, बुलबुलों की तरह बह गईं
और उन ज़िन्दगियों के अफ़साने, पानी उन ज़िन्दगियों को
बिताने वाले गंगा और जमना के किनारों पर रवाब की तरह
हाथ मलते हुए बैठे रह गए-इस दौर की तरह,
धर्म और परम्परा के : जो अपने खोल और साये की तरह
अपनी रूह का मातम कर रहा है(-वह रूह हिंदू हो या मुसलमान: यहूदी हो या
जर्मन: साउथ-अफ्रीकी-ह्वाइट हो या बर्मी-चीनी-माले और रूसी हो या 'कम्युनिस्ट'
नीग्रो-अमरीकी-नेशनलिस्ट चीनी...)
वह मेरे पॉलिटिकल कवि की तरह अपनी साँसों का हिसाब लगा रही है
कि वे कितने गेहूँ के दानों के बराबर हैं....."[2]

स्पष्ट है कि शमशेर को घोषित प्रगतिशील विचारधारा के रूप में नहीं पढ़ा-सुना जा सकता। लगभग प्रत्येक कविता में शमशेर का अपना रंग भी शामिल रहता है।

अशोक वाजपेयी जी शमशेर के कविता-संग्रह 'चुका भी हूँ नहीं मैं' पर अपनी स्पष्ट राय देते हैं- "हाल ही में प्रकाशित अपने तीसरे चयन 'चुका भी नहीं हूँ नहीं मैं' में आभार ज्ञापन करते हुए शमशेर बहादुर सिंह का अपनी कविता की सामाजिक उपयोगिता को लेकर बहुत संशय व्यक्त करना किसी हद तक तो स्वाभाविक संकोच के कारण होगा, लेकिन हद तक उस पूर्वग्रह के कारण भी है जिसके रहते पिछले कई वर्षों में हिन्दी में कविता के सामजिक मूल्य की ऐसी धारण विकसित हुई है जो सामाजिक संघर्ष में कविता की हिस्सेदारी की बहुत स्थूल और सीमित परिभाषा करती है और अगर किसी कविता में तथाकथित सामाजिकता सीधे-सीधे दिखने और समझ में आनेवाला साक्ष्य न हो तो उसकी सामाजिक उपयोगिता मनाने से इनकार करती है।....शमशेर का संशय ऐसे माहौल में अपनी विशिष्ट मुहावरे, दृष्टि और संवेदना की कविता के लिए कोई जगह न देख पाने वाले बुज़ुर्ग कवि का

---

1 यथार्थ यथास्थिति नहीं, पृ. 133

2 प्रतिनिधि कविताएँ, बाढ़, पृ. 81

ईमानदार और लगभग अनिवार्य संशय है।"[1] -नागर कवि का शमशेर के प्रति दया का भाव कितना उचित है, यह तो साफ-साफ नहीं कहा जा सकता, किन्तु शमशेर की उन कविताओं पर संशय अवश्य होने लगता है जो व्यक्ति और समाज को केन्द्र में रखकर लिखी गयी हैं। आशोक जी की बात कहाँ तक सही है, यह हम पहले ही देख चुके हैं। किन्तु यहाँ 'तथाकथित सामाजिक संघर्ष' की कविता 'वाम वाम वाम दिशा' को लेना उचित होगा-

"वाम वाम वाम दिशा,
समय साम्यवादी ।
पृष्ठभूमि का विरोध अन्धकार-लीन । व्यक्ति....
कुहाड़स्पष्ट हृदय-भार, आज हीन ।
हीनभाव, हीनभाव
मध्यवर्ग का समाज, दीन ।
किन्तु उधर
पथ प्रदर्शिका मशाल
कमकर की मुट्ठी में-किन्तु उधर :
आगे-आगे जलती चलती है
लाल-लाल
बज्र-कठिन कमकर की मुट्ठी में
पथ-प्रदर्शिका मशाल ।"[2]

मध्यवर्ग व श्रमिक वर्ग के भाववोध तथा विचार बोध के बीच की खाई को इस कविता में लक्ष्य किया जा सकता है। फिर भी जिनको संशय हो वे प्रो. सुवास कुमार के निम्न कथन को देख सकते हैं- "शमशेर का व्यक्ति और समाज ठस नहीं है-उसमें असीम और अनंत संभावनाएँ व्यंजित होती हैं। किन्तु यह 'अस्मिता' रहस्यपरक और अमूर्त नहीं है। यह वास्तविक और यथार्थ संबंधों के धरातल पर विकसित होती हुई अपने विराटत्व को प्रकट करती है। मार्क्सवादी सिद्धांतों के प्रति प्रतिबद्धता के बावजूद शमशेर को कविता में विजातीय प्रभाव जबरन ठूँसने की ज़रूरत महसूस नहीं होती। यहाँ यथार्थ और आत्म इस

---

1 कवि कह गया है, पृ. 41

2 कुछ और कविताएँ, वाम वाम वाम दिशा, पृ. 8

प्रकार रचे बसे हैं कि इन्हें अलगाना कठिन है। यह बेजोड़ संतुलन शमशेर की कलात्मक ऊँचाई का एक जबर्दस्त राज हैं।"[1]-अब यदि किसी को इस 'बेजोड़ संतुलन' से एतराज़ हो तो मात्र 'बुर्जुआ भावों' की कविताओं को देखें!

शमशेर की तथाकथित सामजिक या राजनैतिक कविताओं की एक पूरी सूची ही बनाई जा सकती है। ये कविताएँ भी किसी ख़ास दौर में नहीं लिखी गयें, बल्कि 1933 से लेकर 1987 तक के विस्तृत काल की रचनाएँ हैं। 'तत्कालिकता' की दृष्टि से तो नहीं पर सामयिकता की दृष्टि से इन रचनाओं का कम महत्त्व नहीं हैं। 'राजनितिक करवटें, 1948' को बतर्ज़ कव्वाली सुनिए-

"क्या गुरुजी मनुऽजी को ले आयेंगे?-
हो गए जिनको लाखों जन्म गुम हुए!"[2]
"किस एटमगर से पूछे कि-इंसान के
हीरोशिमा में कितने अटम गुम हुए!"[3]

इसके बावजूद क्या श्रीकांत वर्मा जी का यह कहना उचित है कि-"शमशेर अपने भौतिक और बौद्धिक अकेलेपन के बहुत निजी संसार को जो उनकी लगभग लक्ष्मण रेखा को लांघकर दूसरी दुनिया में प्रवेश करते हैं तो उस दुनिया की ध्वनियाँ और आकार पराये नज़र आते हैं। शमशेर में ये अपनी सामाजिक हिस्सेदारी न कर सकने का अपराधबोध है।"[4]-उपर्युक्त कविताओं के हवाले से क्या यह कहा जा सकता है कि 'दूसरी दुनिया' की कविताएँ परायी हैं या शर्ते और बनावट चरमराई हुई हैं या फिर सामजिक हिस्सेदारी न निभा सकने का अपराधबोध बन गई हैं? वर्मा जी की इन बातों की परीक्षा अगले अध्याय में भी की जायेगी। फिलहाल शमशेर की कुछ कविताओं के शीर्षक देखना चाहिए-'दुःख नहीं मिटा'(1943), 'कश्मीर'(1946), 'नाविक विद्रोहियों पर बमबारी'(1946), 'देख अपने लीडरों को शोक मत कर'(1946), 'जहाज़ियों की क्रांति'(1946), 'बम्बई के 70 वर्ली किसानों को

---

1 आधुनिक हिन्दी कविता (आत्मनिर्वासन और अकेलेपन का सन्दर्भ), पृ. 276

2 बात बोलेगी, राजनितिक करवटें: 1948 (बतर्ज़ कव्वाली), पृ. 72

3 बात बोलेगी, राजनितिक करवटें: 1948 (बतर्ज़ कव्वाली), पृ. 72

4 `नया-पथ, शमशेर की जन्म-शताब्दी पर विशेष(जनवरी-मार्च 2010)

देखकर' (1945-46), 'घिर गया है समय का रथ', 'भारत की आरती' (1947), 'रक्षा', 'निजामशाही : सन् 1948', 'बहुत सीधे से प्रश्न', 'वकील करो' (1964), 'सत्ताईस मई सन् 64', 'लेनिनग्राद' आदि। इन कविताओं के शीर्षकों से ही स्पष्ट है की शमशेर के यहाँ सामयिक विषयों की कमी नहीं रही। औसत निकालने वाले अवश्य इन कविताओं पर संदेह कर सकते हैं। पर शमशेर का यह पक्ष भी उन तथाकथित व्यक्तिपरक कविताओं से कम नहीं है।

शमशेर इन्सानी ज़िंदगी की अहमियत को बहुत अच्छी तरह जानते व समझते हैं। 'हिरोशिमा' की बमबारी ने उन्हें अंदर तक हिला के रख दिया था। वह किसी भी प्रकार के साम्राज्यवाद के खिलाफ रहे हैं। चीन ने जब भारत पर आक्रमण किया तो वे व्याकुल हो गए। भारत-चीन युद्ध पर लिखी उनकी महत्वपूर्ण कविता 'सत्यमेव जयते' के ये अंश देखने काबिल हैं-

"*माओ ने सब कुछ सीखा*
एक बात नहीं सीखी :
कि झूठ के पाँव नहीं होते!
सत्य की ज़बान बंद हो,
फिर भी वह गरजता है!"[1]

महेंद्र भटनागर जी की दो पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं- 'संग्रह की सबसे सशक्त कविता भारत-चीन युद्ध पर लिखित 'सत्यमेव जयते' है। इसकी पंक्ति-पंक्ति में कवि की आत्मा का ओज समाहित है। सरलता-सहजता के साथ इसमें काव्य-तत्त्व हैं।"[2]-काव्य-तत्त्व हों या न हो पर गरजते माओ को चेतावनी अवश्य है-

"*शिव-लोक में चीनी दीवार न उठाओ!*
वहाँ सब कुछ गल जाता है,
सिवाय सच्चाई की उज्ज्वलता के!"[3]

---

1 चुका भी हूँ नहीं मैं, सत्यमेव जयते, पृ. 40

2 http://www.srijangatha.com/? pagename= pustakayan1- 13 May 2 (जन्मशती वर्ष पर याद करते हुए- महेंद्र भटनागर)

3 चुका भी हूँ नहीं मैं, सत्यमेव जयते, पृ. 43

कवि का यह विश्वास सत्य की विजय का है और 'भारत गुण-गौरव' का है। जो कवि चीनी साम्राज्यवाद की आकांक्षाओं को पस्त कर सकता है, वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद की रंग-भेद नीति को भी पस्त करने का माद्दा रखता है। महात्मा गांधी ने गोरों का अत्याचार व शोषण, अफ्रीका में देखा और वहीं से उन्होंने नस्लीय भेदभाव पर प्रहार करना शुरू कर दिया था। शमशेर भी 'अफ्रीका' कविता में कुछ ऐसा ही करते हैं। कुछ पंक्तियाँ देखिए-

"गुस्से में खड़े होकर
सफेद पत्थर को ठोकर
मारकर
दूर कर देता है
जैसे ही कोड़ा उस पर
पड़ता है
वह उछलकर उसकी गर्दन
दाँत से दबोच लेता है ।
-हाय! हाय! हाय!"[1]

काले-गोरे का भेद पैदा करने वाले या गोरे को ही सुंदरता का पर्याय समझने वाले 'गोरे मालक' की गर्दन बालक उछलकर दबोच लेता है। ऑस्ट्रेलिया या अन्य देशों में क्या सुंदरता का पैमाना बदल चुका है!

शमशेर हर तरह की कट्टरता के खिलाफ़ रहे हैं। दंगों की राजनीति पर भी उन्होंने लिखा है और दंगे फैलाने वालों पर भी। एक सतर्क कवि ही 'हैवॉ ही सही' कविता लिख सकता है-

"हाँ 'हिंदू धर्म' इसी में है!
'शाने-इस्लाम' इसी से है!
-नेता माउन्टबैटन ही रहे!
काबा-काशी लन्दन ही सही!"[2]

---

1 प्रतिनिधि कविताएँ, अफ्रीका, पृ. 178

2 बात बोलेगी, हैवाँ ही सही, पृ. 49

हालाँकि यह कविता अविभाजित भारत के दौर में अर्थात 1946 के आसपास लिखी गयी है, किन्तु आज भी ताज़ा लगती है। 'अल्लाह अकबर' व 'जय हिंद' का नारा लगाकर साम्प्रदायिक दंगे भड़काने वालों पर यह एक करारा व्यंग्य है। क्या अंग्रेजीदां लोग आज भी भारत पर हुकूमत नहीं कर रहे हैं या अमेरिकी बाज़ार की नीतियाँ आज भी जनता के पेट पर लात नहीं मार रही हैं? 'धर्म' और 'मज़हब' वाले ऐसे ही लड़ते रहेंगे और अमरीकी बाज़ार ऐसा हावी होगा कि घर बैठे 'ग्राहक' को अमेरिका का सड़ा-गला माल मिलेगा। या फिर इस हाल का और विस्तार हो जाये शायद-

"इल्मों-हिकमत, दीनो-ईमाँ, मुल्को-दौलत, हुस्नो-इश्क;
आपको बाज़ार से जो कहिए ला देता हूँ मैं ।"[1]

स्पष्ट है कि अब तो प्रत्येक 'चीज़' वस्तु बनकर मिलने लगी है, इस प्रसंग को यदि यहीं समाप्त कर दें तो कहना यह है कि शमशेर भाषाई दंगों पर वैसा ही प्रहार करते हैं, जैसे धार्मिक या साम्प्रदायिक दंगों पर, उनका तो कहना ही है कि-

"ईश्वर अगर मैंने अरबी में
प्रार्थना की, तू मुझसे
नाराज़ हो जायेगा?
अल्लाह यदि मैंने संस्कृत में
संध्या कर ली तो तू
मुझे दोज़ख़ में डालेगा ।"[2]

इसी प्रकार भाषाई दंगों पर लिखी गई सन् 1965 की कविता में कवि का सात्विक आक्रोश और क्षोभ इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है-

"अभी वह बहुत दूर की बात है.... ।
अभी हमारे मुँह में झाग है आँखों में क्रोध और दंभ और
एकांगी विद्वता की कठोर लालिमा ।

---

1 प्रतिनिधि कविताएँ, कते और शे'र, पृ. 115

2 चुका भी हूँ नहीं मैं, ईश्वर अगर मैंने अरबी में प्रार्थना की, पृ. 100

अभी हम बात-बात पर दाँत दिखाते हैं, देखो हम कैसे
हुमसते हैं बार-बार
-सभी शब्द हमारे कोष में है
एक प्यार के वास्तविक शब्द को छोड़कर ।
हमारा गर्व एक दूसरे को पीस रहा है, हम मात्र जबड़े हैं
अत्यंत शक्तिशाली जबड़े, हम सभी ।
पशु-गर्व हमें देखकर कुछ सीखे तो सीखे ।"[1]

ऐसी ही व्यंग्यात्मक कविताओं को ध्यान में रखकर शिवकुमार मिश्र जी ने शमशेर के कविता-संग्रह 'चुका भी हूँ नहीं मैं' पर लिखा है-"किन्तु शमशेर समसामयिक सवालों को अपनी रचनात्मक संवेदना की परिधि में तभी लेते हैं जब उनकी समसामयिकता के भीतर से गहराई से व्याप्त किसी बड़े मानवीय पहलू ने उनके संवेदनशील कवि की आत्मा को भीतर से झकझोरा है, और उन्हें अपने को अभिव्यक्त करने के लिए, अपने को सही रूप में पाने और पहचानने के लिए विवश कर दिया है, जिस पर उनकी आस्था, उनका मनुष्य, उनका कलाकार, उनकी शराफ़त और उनकी संस्कृति टिकी थी, या फिर वर्तमान का वह उद्वेलन उन्हें उनके सांस्कृतिक अतीत से, उनके आकांक्षित भविष्य से, और उनके अपने समय के नेक और उदार आधारों से काटकर उन्हें एकदम शून्य में फेंक देना चाहता हो। और जब-जब शमशेर ने ऐसा अनुभव किया है, उन्होंने समसामयिक सवालों पर लेखनी उठाई है, जो कि उनके निर्वाह में उन्होंने अपने निजी 'अंदाज़े बयाँ' को कायम रखा है। हिन्दी-उर्दू का सवाल हो अथवा भाषाई दंगों का सवाल, शमशेर के लिए ये सवाल मनुष्यता की बुनियादी अहमियत का और उनकी बुनियादी संस्कृति का अंग बनकर सामने आये हैं और इसी रूप में अपनी रचना में उन्होंने उन्हें पेश भी किया है।"[2]-मनुष्यता की बुनियादी अहमियत समजने वाला कवि ही कह सकत है कि-

"*वो अपनों की बातें, वो अपनों की खू-बू*
हमारी ही हिन्दी, हमारी ही उर्दू!"[3]

---

1 चुका भी हूँ नहीं मैं, भाषा, पृ. 67

2 साहित्य और सामजिक सन्दर्भ, शमशेर की कविता के नए तेवर, पृ. 142

3 प्रतिनिधि कविताएँ, कते और शे'र, पृ. 115

प्रभाकर श्रोत्रिय के लेख 'शमशेर : भावसाध्य पावनता' पर शमशेर ने जो ख़तो-किताबत की, उसमें उन्होंने स्वीकार किया है कि-"हालाँकि क्लासिकल' ('रोमानियत' के विलोम के रूप में) एक बेमानी लफ्ज़ है, फिर भी यह अजब बात लगेगी कि मैं कला के क्लासिकल आदर्शों को ही पकड़ने की निरंतर कोशिश में रहा हूँ।"[1]-मुक्तिबोध ने भी 'शमशेर की आत्मा को' 'रोमैंटिक क्लासिकल' प्रकार की मानते हुए लिखा है- "मनोवैज्ञानिक वस्तुवादी कवि जब सामजिक भावनाओं तथा विश्व-मैत्री की संवेदनाओं से आछन्न होकर मानचित्र प्रस्तुत करता है तो वह उसी प्रकार अनूठा और अद्वितीय हो उठता है, जैसे कि किसी क्षेत्र में भिन्न तथा अन्य कवि कदापि नहीं। शांति पर लिखी शमशेर की कविता क्लासिकल ऊँचाइयों की उपलब्धि कर चुकी है।"[2]-इससे यह सिद्ध होता है कि शमशेर ने 'सामजिक भावनाओं तथा विश्व-मैत्री की संवेदनाओं से आछन्न हो कर मानचित्र 'प्रस्तुत' किया है। इसलिए आवश्यक है 'शांति के ही लिए' की निम्नलिखित पंक्तियों को देखा जाये-

"सबसे बुनियादी वह पहली चीज़ कौन-सी है
की मानव-मात्र के लिए जिसका होना आवश्यक है?
तो एक ही जवाब होगा तुम्हारा :
एकदम पहली बार ही,
फिर दूसरी बार भी,
और अन्तिम बार भी
यही एक जवाब-
शांति!"[3]

इसीलिए-

"सभी को शान्ति प्यारी है : उतनी ही प्यारी
जितनी कि सबको अपनी आँख प्यारी होती है।"[4]

---

1 संवाद, पृ. 128

2 शमशेर मेरी दृष्टि में-मुक्तिबोध

3 बात बोलेगी, शान्ति के ही लिए, पृ. 84

4 बात बोलेगी, शान्ति के ही लिए, पृ. 85

इसी प्रकार शमशेर की बहुपठित कविता है 'अमन का राग'। जो शुरू होती है इन पंक्तियों से-

"*सच्चाइयाँ*
जो गंगा के गोमुख से मोती की तरह बिखरती रहती हैं
हिमालय की बर्फीली चोटी पर चांदी के उन्मुक्त नाचते
परों में झिलमिलाती रहती हैं
जो एक हज़ार रंगों के मोतियों का खिलखिलाता समंदर है"[1]

जो कवि गंगा के गोमुख से सच्चाइयाँ लेकर चला हो वह सबको अपने में समेटता चलेगा। पूरब-पश्चिम की संस्कृतियाँ उसकी आत्मा के ताने-बाने में सरगम की तरह हिलोरे हैं। भारत का आदिम और अभिनव राग लेकर वह भीषण अशांति के माहौल में शांति के दूतों को साथ लेकर आगे बढ़ता चला जा रहा है। किन्तु इस कविता के बारे में रामविलास जी का कहना है- 'जो लोग यथार्थ पर-किसी न किसी रूप में-कल्पना का आवरण डालते हैं, वे स्वभावतः कहीं-न-कहीं और कभी-न-कभी, रहस्यवाद की शरण में आते हैं, और इस नव्य रहस्यवाद का कोई क्रांतिकरी दार्शनिक या सामजिक पक्ष नहीं होता।"[2]-जबकि रोहिताश्व जी का कहना है-"ब्रिटिश साम्राज्य के शोषण तले पूँजीवाद-उपनिवेशवाद हो, भारत-युगांडा, कम्बोडिया, कोरिया, जापान के सन्दर्भ में अतीत हो। सद्यः अतीत काल में, अमेरिका और रूस का शीत युद्ध हो अथवा वर्तमान दौर में अमेरिकी साम्राज्यवाद एवं फासीवाद का तांडव नृत्य हो अथवा ईराक, ईरान, अफगानिस्तान का संघर्ष(अथवा बाबरी मस्जिद ध्वंस या गुजरात का गोधरा कांड)...। अतीत के परिदृश्य को याद करते हुए शमशेर के भाव हैं, हम शान्ति और सुख के क्षणों में पगी हुए उषा के मधुर अधर कैसे बन सकते हैं? हमारी एकता, विश्वास, वैश्विक कुटुम्ब के स्वर जो कभी संसार के पञ्च परमेश्वर का मुकुट पहनकर मानवीय अमरता का लोक-प्रेसिडेंट बनने के सपने थे, वे क्या हुए हैं?"[3]-ज़ाहिर है यथार्थ का एक रूप यह भी हो सकता है। और स्पष्ट होता है इस पैराग्राफ से-" 'अमन का राग' कविता का स्थापत्य वैश्विक कला सृजना की परम्परा में वैभवशाली, मानवीय,

---

1 बात बोलेगी, अमन का राग, पृ. 77

2 नयी कविता और अस्तित्ववाद, शमशेर बहादुर सिंह का आत्म-संघर्ष और उनकी कविता, पृ. 85

3 आलोचना, अमन कर राग, रोहिताश्व, (जुलाई-सितम्बर 2008), पृ. 57-58

उदात्तता का अवगाहन है । अतीत के होमर से लेकर, वर्तमान काल में आरागों, नेरुदा, सरदार जाफरी आदि का ज़िक्र कलाकारों की भूमिका के लिए हुआ है। संगीतकार बिटोवन, फैयाज़ खाँ का ज़िक्र पॉल राब्सन की सिम्फनी और उदयशंकर द्वारा अफ्रीका में नयी अजंता को स्टेज पर उतारने की भावाभियक्ति के क्षणों में कला की उत्कृष्टता के लिए है। ग़ालिब, तुलसी, शेक्सपीयर, गोर्की जैसे शब्द-शाहकारों की फेहरिस्त 'काव्य-संरचना' की ज़मीन पर भविष्य में बच्चों की आँखों के नूर और पवित्रता की सलामती के लिए हैं। काल, समय और स्पेस को अतिक्रमित करती हुई शमसेर की उदात्त भावभूमि हमारे समकालीन काव्य-जगत की विलक्षण भाव भूमि है। जिस विश्व संदृष्टि का निर्वाह उन्होंने अपनी 'अमन का राग' कविता में किया है । वह क्लासिक विजन, प्रतिबद्ध सोच और शिल्प के प्रयोग में, बिम्ब विविधता और प्रतीकात्मक संरचना में लसानी हैं, वे कवियों के कवि ही नहीं हैं बल्कि आम पाठकों और दु:साहसी आलोचकों के सहयात्री भी प्रमाणित होते हैं, कल्पना और दर्शन की वैश्विक सरज़मीं पर। साम्राज्यवादी शोषण और आतंक के खिलाफ़ वे अपनी क्लासिकी परम्परा और सौन्दर्यबोधी आशंसा से प्रतिबद्ध भाव की सौन्दर्यबोधी विधियों से वे अमन का राग' सिरजते हैं, विश्व के सभी कलाकारों, संगीकारों और रचनाकारों की विलक्षण भाव भूमि में।"[1]- इस लंबे उद्धरण से कहा जा सकता है कि शमशेर विजन के कवि हैं। बावजूद इसके मलयज जी का ख्याल है कि 'शमशेर मूड्स के कवि हैं किसी विजन के नहीं' तो सुवास जी की यह टिप्पणी ही देख लें- "किन्तु ग्रहण कर वे (शमशेर) कविता को 'विजन' भी देते हैं। शमशेर आत्मपरक, मनोवैज्ञानिक, यथार्थवादी और प्रभाववादी साथ-साथ हैं। वे मूड्स और 'विज़न' दोनों के कवि हैं और उसमें कोई विरोधाभास नहीं है। 'अमन का राग', 'एक आदमी दो पहाड़ों के कुहनियों से ठेलता' आदि कविताएँ मूड्स के उच्छावस से नहीं बनतीं, उनमें व्यापक 'विज़न' की अभिव्यक्ति हुई है। शमशेर सम्पूर्ण मानवता तथा व्यक्ति मनुष्य के कर्म और उसकी महानता में अगाध विश्वास रखते हैं।"[2]-कहा जा सकता है कि 'सम्पूर्ण

---

1 आलोचना, अमन कर राग, रोहिताश्व, (जुलाई-सितम्बर 2008), पृ. 61-62

2 आधुनिक हिन्दी कविता, (आत्मनिर्वासन और अकेलेपन का सन्दर्भ), पृ. 277.

मानवता तथा व्यक्ति मनुष्य के कर्म और उसकी महानता में अगाध विश्वास' के बिना कोई भी राग नहीं बन सकता।

व्यक्ति-विशेष पर केंद्रित शमशेर की रचनाओं का कम महत्त्व नहीं है किन्तु आरम्भ में ही इस बात को स्पष्ट कर देना होगा कि शमशेर का हिन्दी की ओर रुझान निराला, पन्त व बच्चन की वजह से हुआ। 1934 से 1936 के बीच उनकी यदि कोई रचना प्राप्त नहीं होती तो इसका एक कारण है दिल्ली में उकील बंधुओं से चित्रकला का प्रशिक्षण। पत्नी के देहांत के बाद जीवन में गहरे हो गए अकेलेपन से जूझते रह कर भी शमशेर कविता को साध ना सके। बच्चन के प्रति उनके लगाव का कारण भी शायद कवि-व्यक्तित्व के अतिरिक्त पत्नी विहीन होना था। दिल्ली से देहरादून लौटने के पश्चात ससुराल में दवा कि दुकान सँभालते हुए देख बच्चन ने उन्हें इलाहाबाद खींच लिया। उन्हीं के शब्द हैं- "सन् 37 में बच्चन की प्रेरणा से खिंचकर दोबारा इलाहाबाद आया। एम.ए. के इम्तहान में तो बैठा, मगर हाँ, नए सिरे से जमकर हिन्दी पद्य-रचना का अभ्यास शुरू कर दिया।"[1]-और जो बात समझ में आय वह यह कि 'अब हिन्दी कविता गंभीरता से लिखनी है'। सो गंभीरता की शुरुआत भी 1938 में प्रकाशित 'निशा निमंत्रण के कवि से' करते हैं-

"यह खंडहर की साँस
तुम जिसे भर रहे हो वंशी में-
है तंग घुटी-सी सुबह
लाल सफेद सियाह!"[2]

यह कविता बच्चन के बारे में जितना बताती है उससे कहीं अधिक स्वयं शमशेर के बारे में है। 'खंडहर की साँस' 'तंग घुटी-सी सुबह' शमशेर की मनोव्यथा को उसके अकेलेपन में दर्शाती है। किन्तु अकेलेपन का गहरा अहसास भरने की जो बेचैनी है वह निम्नलिखित है-

"मत गाओ यह गीत
मैं बिखर पड़ूँगा पागलपन में
ओ दूर अजान मुसाफ़िर
यह हँसी मरुस्थल की है ।"[1]

---

1 दूसरा सप्तक, पृ. 76

2 उदिता, निशा निमंत्रण के कवि से, पृ. 51

यह बेचैन अभिव्यक्ति अपने खरेपन में सोना भले न हो पर ईमानदार अवश्य है। 'हँसी मरुस्थल' में जो नयापन है वह छायावादी काव्य से भिन्न है। असल में उत्तर छायावाद का दौर व्यक्तित्व के निजी धरातल की एक नए ढंग की खोज का है। इस खोज में सुख-दुःख का अहसास भी नए रूप में प्रकट होता रहा है। निराला शमशेर के प्रिय कवि रहे हैं। उन पर उन्होंने एक लेख 'कविता की बातें: निराला की कविताएँ' भी लिखा है। यदि हमें निराला जी के जीवन तथा काव्य के बारे में न भी मालूम हो तो शमशेर की 'निराला के प्रति' शीर्षक कविता से कुछ अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है। अर्थात् एक कवि अपने पुरखे से किस प्रकार संवाद स्थापित करता है-

"*भूलकर जब राह-जब-जब राह...भटका मैं*
तुम्हीं झलके, हे महाकवि
सघन तम की आँख बन मेरे लिए,"[2]

अँधेरे समय की घनघोरता में शमशेर के लिए निराला आँख बनकर झलक उठते हैं। क्योंकि निराला जैसे कवि ने एक पाठक के हृदय को शान्ति-शीतलतम प्रदान की है। इसलिए-

"*हाँ, तुम्हीं हो, एक मेरे कवि :*
जानता क्या मैं-
हृदय में भरकर तुम्हारी साँस-
किस तरह गाता,
(ओ विभूति परम्परा की!)
समझ भी पाता तुम्हें यदि मैं कि जितना चाहता हूँ,
महाकवि मेरे !"[3]

1939 की इस कविता में निराला से जो संवाद स्थापित किया गया है, वह उनके कवि-व्यक्तित्व के कारण हुआ है। शमशेर उसी कवि-व्यक्तित्व से सीखते हैं और परम्परा की विभूतियों से निरंतर संवाद बनाए रखते हैं।

---

1 उदिता , निशा निमंत्रण के कवि से, पृ. 51

2 कुछ कविताएँ, निराला के प्रति, पृ. 7

3 कुछ कविताएँ, निराला के प्रति, पृ. 8

शमशेर ने अपने समकालीनों पर भी लिखा है और कहीं-कहीं उनके सृजन पर भी टिप्पणी की है। त्रिलोचन के 'धरती' काव्य-संग्रह पर यह टिप्पणी काफ़ी पढ़ी-सुनी जाती है-"तुमने 'धरती' का पद्य पढ़ा है?, उसकी सहजता प्राण है।"[1]-और 'त्रिलोचन को' कविता में सर्वहारा की सत्ता के लिए मिलकर दुर्जय कर्म करने का आह्वान करते हैं शमशेर। यहाँ तक कि 'सारनाथ की एक शाम' में त्रिलोचन याद आते हैं। त्रिलोचन के काव्य-व्यक्तित्व का एक पूरा ख़ाका पेश करते हैं। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"ओ
शक्ति के साधक अर्थ के साधक
तू धरती को दोनों ओर से
थामे हुए और
आँख मीस हुए ऐसे ही सूँघ रहा है उसे
जाने कब से।"[2]

क्या शमशेर की ऐसी ही कविताओं को देखकर अशोक वाजपेयी जी ने कहा था कि- "कहना खूब जानने वाले शमशेर अपने ढंग का अद्वितीय तभी कुछ कर पते हैं जब वे अनकहा कुछ-न-कुछ छोड़ देते हैं। अगर अज्ञेय शब्द के कवि हैं, उसकी मुखरता के, तो शमशेर नीरवता के कवि हैं, उनके मौन के कवि।"[3] -तभी तो वाजपेयी जी 'शब्दों के बीच की नीरवता' की तलाश करते हैं। किन्तु विष्णुचंद्र शर्मा जी तो लिखते हैं- "शमशेर प्रभात और शाम के अद्भुत चित्रकार हैं। त्रिलोचन मित्र या कवि ही नहीं उनकी कविता के एक बड़े कैनवास हैं। जब मैं शमशेर के कई रूपों की बात उठाता हूँ तो मुझे फलक पर 'व्यभिचार ही आधुनिकतम काव्य कला है' कहने वाला व्यंग्य विद्रूप का शमशेर का मार्क्सवादी पहले नज़र आता है। फिर एक शब्द का पारखी। एक बहुमूल्य अतीत का खोजी। और भविष्य के 'बहुत

---

1 कुछ कविताएँ, राग, पृ.10

2 चुका भी हूँ नहीं मैं, सारनाथ की एक शाम, पृ. 22

3 कवि कह गया है, शब्दों के बीच की नीरवता का कवि, पृ. 48

दूर, बहुत आगे' खड़े शमशेर एक दूसरे के विरोधी नहीं लगते हैं।"[1]-जिस कविता का उल्लेख वाजपेयी जी ने किया है उसी कला की शुरुआत निम्न पंक्तियों से होती है-

"*ये आकाश के सरगम*

खनिज रंग हैं

बहुमूल्य अतीत है

या शायद भविष्य ।"[2]

कई व्यक्तियों के आकाश को शमशेर देख रहे हैं अपने करीब से। इसलिए विष्णुचंद्र शर्मा जी का उपर्युक्त कथन उचित ही है। अब यदि कोई शमशेर की 'बात बोलेगी' से भिन्न या बोलती हुई बात से भिन्न 'नीरवता की तलाश' करे तो क्या किया जा सकता है। शमशेर की मौन और मुखर कविताओं पर वाजपेयी जी के इस कथन की महत्ता से किसी को इनकार नहीं होना चाहिए- "शमशेर की सजग संवेदनशीलता का एक दुर्लभ पक्ष उन कविताओं में मिलता है जो उन्होंने दूसरे कवियों-कलाकारों के लिए लिखीं हैं। रचनात्मकता के प्रति उनकी गहरी ललक और सम्मान का ही यह प्रमाण है कि हिन्दी में शायद उन्होंने सबसे अधिक कविताएँ दूसरे कवियों, चित्रकारों, कलाओं आदि के बारे में लिखी हैं। रचनात्मकता के प्रति उनकी गहरी ललक और सम्मान का ही यह प्रमाण है कि हिन्दी में शायद उन्होंने सबसे अधिक कविताएँ दूसरे कवियों, चित्रकारों, कलाओं आदि के बारे में लिखी हैं। जिस तरह से चीजों और मनुष्य की एक बिरादरी उनकी कविता खोजती और हमारे लिए उजागर करती है, मुक्तिबोध, त्रिलोचन, मोहन राकेश, गुलाम रसूल संतोष, गिन्सबर्ग आदि के लिए लिखी गयी उनकी कविताएँ सृजनधर्मियों की एक आत्मीय बिरादरी से हमारा घनिष्ठ और आत्मीय संपर्क कराती हैं।"[3]- यह कथन इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि शमशेर ने कई व्यक्तियों पर तथा उनकी रचनात्मकता पर कविताएँ लिखी हैं। जैसा देखा शमशेर ने उसमें खुद की भी तलाश की उन्होंने। निराला के बाद तो मुक्तिबोध उनके मीनिंगफुल पोएट थे। 'बाबा नागार्जुन' ठेठ जनता की ठाठ के अनमोल ख़जाने जैसे लगते शमशेर को। अज्ञेय की सुरुचि से बिना शमशेर के कौन बात करने वाला है-

---

1 काल से होड़ लेता शमशेर, पृ. 108

2 चुका भी हूँ नहीं मैं, सारनाथ की एक शाम, पृ. 20.

3 कवि कह गया है, तीसरे संसार की ज़रूरत, पृ. 45

"किससे लड़ना?
रूचि तो है शान्ति,
स्थिरता,
काल-क्षण में
एक सौन्दर्य की
मौन अमरता ।"[1]

"कवि शमशेर और कवि अज्ञेय की 'सुरुचि' छायावाद और प्रगतिवाद की रूढ़ि से अनुक्षण मुक्त होने की रचनात्मक लड़ाई थी। उस अनुक्षण मुक्ति को ही मैंने (विष्णुचंद्र शर्मा) अपनी डायरी में पढ़ा था। रघुवीर सहाय ने एक ख़त में उसे पहचाना था। यह कविता की 'लड़ाई': संवेदना, परम्परा, आधुनिकता और इन्द्रिय बोध विषम भारतीय वातावरण में बड़ी बारीक़ी से नागर कवियों में चल रही थी। कविता के विकास की यह 'लड़ाई' बदलते हुए आज़ाद भारत की शांति और स्थिरता की तलाश भी थी।"[2]-इसी प्रकार 'नेरुदा' पर लिखी कविता की समीक्षा करते हुए विष्णुचंद्र शर्मा जी का यह निष्कर्ष उल्लेखनीय है- "यह सह-व्याप्ति' का भाव ही एक कवि को दूसरे कवि का आत्मीय बनाता है। शमशेर के एकांत में ही तुमुल संघर्ष का अपनाव भरा भाव। जिसमें तनाव भी है। एक नेरुदा वहाँ निरंतर आंतरिक सम्मिलन को उपलब्ध करता रहा है। यही तो नेरुदा के कवि का मानवीय पक्ष है, 'वही तो तू है, हमारा नेरुदा!'-नेरुदा एक लोक धारा का मानवीय कवि है, जो शमशेर के स्वभाव-सा है। कहीं भी रहे, अपने एकांत क्षण में वह 'एक निरंतर आत्मिक सम्मिलन की उपलब्धि' करता भी रहता है। इस कविता में दो दूर देश के कवि सहव्याप्ति का अनुभव मोनोलॉग शैली में करते हैं।"[3]-स्पष्ट है इन कविताओं में शमशेर 'एक निरंतर आत्मिक सम्मिलन की उपलब्धि' प्राप्त करते रहे हैं।

---

1 कुछ कविताएँ, अज्ञेय से, पृ. 64

2 काल से होड़ लेता शमशेर, पृ. 15-16

3 काल से होड़ लेता शमशेर, पृ. 70-71

कवि या कलाकारों की ही भांति शमशेर ने कलाओं से प्रभावित होकर भी कलम चलाई है। अज्ञेय जी के ड्रॉइंग रूम में वॉन गॉग के चित्र को देखकर जो कविता शमशेर ने लिखी थी वह उनके काव्य-कैनवास पर यों उभरती है-

" इसीलिए तमसा-से काले काग
झुण्ड-के-झुण्ड गहरे नीले-काले
काक-रोर करते
ढक लेने उसे
मानों छा ही लेंगे उसे
लील ही जायेंगे वे ज्वार को
ऐसे
उमंगे-उमंगे
लीन हुए..... ।" [1]

दूसरों का तो पता नहीं, पर नंदकिशोर नवल जी को 'वॉन गॉग का एक चित्र' शीर्षक कविता में साफ-साफ दिखाई देता है कि शमशेर ने 'मानव-विरोधी शक्तियों के पराजित होने का बड़े ही दृढ़ शब्दों में आख्यान किया है।' इसीलिए नवल जी शमशेर की प्रभाववादी कवि की छवि को फ्रांसीसी प्रभाववादी कविताओं से अलगाते हुए लिखते हैं- "फ्रांसीसी प्रभाववादी कवियों में हम जीवन के अनिवार्य पक्षों का बोध और युगीन संघर्षों तथा प्रतिक्रियाओं की छाया नहीं पाते, जबकि शमशेर की कविता में हमें गहरे रूप से ये चीजें मिलती हैं।"[2]-नवल जी का संकेत उन कविताओं से भिन्न हैं। मसलन 'मेरे समय को...', संसार के चक्के पर हैं', 'एक आदर्श लहरों के पार..', 'गोया वो...' या 'विजय सोनी के चित्र' की निम्न पंक्तियाँ-

"आज की चीख़-पुकार में
एक बहुत कोमल तान
खो गयी हैं ।"[3]

---

1 इतने पास अपने, फ़ान गौग का एक चित्र, पृ. 63

2 शब्द जहाँ सक्रिय हैं, पृ. 12

3 इतने पास अपने, विजय सोनी के चित्र, पृ. 35

या फिर 'पिकासोई कला' शीर्षक की निम्नलिखित पंक्तियाँ-

"*सकल वर्ग सर्ग में जो है*
सब कुछ बनाकर दृष्टि एक
मार्मिक-इतिहास-भिदी अद्‌वितीय
अत्यधिक निजी अधुनातन की सीमाश्री
सदा एक नए समय की गर्म साँस
अपनी-सी ही बहुत यह कला पिकासोई.... ।"[1]

'एक नए समय की गर्म साँस' तथा 'अपनी सी ही' जैसे वाक्य से स्पष्ट है कि शमशेर कला को अद्वितीय, निजी और इतिहास-भेदी दृष्टि से संपन्न मानते हैं। वस्तुतः पिकासोई कला के माध्यम से शमशेर अपने कविता-संसार को भी विश्लेषित करते हैं। शमशेर की कविताओं के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शमशेर का रचना संसार काफी विस्तृत है। उन्होंने कई विषयों पर अपनी कलम चलाई है। और कई रूपों में अपने को अभिव्यक्त किया है। शमशेर का कवि क्रियाशील है, जो भीतर-बाहर की आवाजाही करता रहता है। वह अपने पुरखों से उसी प्रकार संवाद करात रहता है। जिस प्रकार उसके पूरखों ने अपने पूर्वजों से किया था। वह उनके कला-कर्म से निरंतर लाभ उठाता रहता है और उनको सुनता-गुनता रहा है। ऐसा भी नहीं है कि वह अपने समकालीनों से अलग रहा हो। अपने समकालीनों से उनके सुरूची पर, उनके कला-कर्म पर, उनके दोष-गुणों पर, उनके काव्य-संस्कारों पर भी बातचीत करता रहता है तथा उन्हें भी अपने पूर्वजों से जुड़ने की, व्यक्ति और समाज से जुड़ने की सीख देता है एवं अपने पूरखों के अतिरिक्त उनकी आड़ी-तिरछी लकीरों से, उनकी शब्द साधना से, उनके काव्य-व्यक्तित्व से प्रभावित भी होता है तथा प्यार भी करता है। शमशेर का कवि अपने को प्रत्येक व्यक्ति में तथा प्रत्येक व्यक्ति में अपने को पाता है। और यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। चित्र हो या काव्य, मूर्ति हो या मॉडल, नृत्य हो या संगीत, नाटक हो या फिल्म, वह सबको बड़े गौर से देखता-सुनता है और कभी-कभी काफी देर तक एक ही भावस्थिति मे तैरता उतराता है, और तब कहीं जाकर खोज को अंजाम देता है। सौंदर्य के बिखरे पड़े ख़ज़ानों को इकठ्ठा करता है तथा अपनी कला को नये-ताज़े रूप देता है। तभी तो वह समशील कलाकार, कार्यकर्ता, समाज-सेविका आदि कि बिमारी पर या निधन पर शोक

---

[1] इतने पास अपने, पिकासोई कला, पृ. 25

प्रकट करता है और यह शोक दिखावटी नहीं है बल्कि जीवन व मृत्यु के झूलते मानव को वह निहारता ही रहता है। इन लोगों के साथ शामिल हो जाता है कवि की हड्डियों में बसा परिवार-माँ, पिता, पत्नी आदी का प्यार। इससे कवि को जो लाभ पहुँचता है वह है 'निरंतर आत्मिक सम्मिल की प्रतीति'। इन लोगों के जीवन-संग्राम से वह कभी-कभी ऊर्जा भी लेता है। और अगली पीढ़ी के रचनाकारों से संवाद भी कायम किये रहता है। उनकी मकिनीकी ज़िंदगी के अंधियारे में वह उनके साथ रहता है। तभी तो वह सब पाठकों-श्रोताओं से कहता है-''आईनों रौशनाई में घुल जाओ और आसमान में मुझे लिखो और मुझे पढ़ो।'

शमशेर ने गीत, ग़ज़ल, रुबाई, कते व शेर, सॉनेट, मुक्तक आदि भी लिखे हैं। जिसमें स्नेह भी है, मृत्यु की सिहरन भी है, अकेलेपन का अवसाद भी है तथा प्यार की उमंग भी है। कवि जब हार जाता है तो तुरंत जीतने की आकांक्षा से कर्म करता है। हुंकार-टंकार के साथ मौन आहों में बुझी तलवार को खराद पर चढ़ाता है और जीवन की कमान को ढीला भी रखता है एवं कसता भी है। ढीलापन आंतरिक मौन की निशानी तथा कसापन आंतरिक साहस की। कवि अपने को चुका हुआ मानने को तैयार नहीं है। इसीलिए वह काल से होड़ भी लेता है और कमज़ोर पंजो को विराम देकर कुहनियों से ज़ोर लगता है। गो गदेलियों में दम न हो तब भी कवि विवश नहीं होता अपनी आँखों में प्यार भरकर राग बनाता है। अपनी घनीभूत पीड़ा में विरह-मिलन के पाप जलता है किन्तु फौरन अपनी प्रेमिका के अस्तित्व को आसपास महसूस कर थरथराता भी है और उसके सौन्दर्य की खोज में जुट जाता है। सलोने जिस्म को वह ऐसे सजाता है मानों भरी-पूरी गति वाला चित्र हो। और आड़ी-तिरछी रेखाओं से ऐसा चित्र बनाता है कि नारी देह की विभिन्न मुद्राएँ सजीव हो उठें। नारी दृष्टि से अपने शरीर को भी वह रंग-रूप देता है। परन्तु सौन्दर्य की खोज में वह जनता के पास जाता है और उनके साथ मिलकर नारा भी लगाता है। जनता से हृदय मिलाने का प्रयास करता है, उनके दुखों में शामिल होता है। अकाल व बाढ़ देखकर वह इंसानी ज़िंदगी के उतार-चढ़ाव को समझने का प्रयास करता है। जनता का दु:ख वहीं तक उसका अपना है, जहाँ तक वह अपने दु:ख को पाता है। वह जानता है कि जब भूख लगेगी तभी इन्कलाब आयेगा। कभी-कभी आर्थिक बदहाली से युक्त शमशेर की आत्मा झुलस उठती है। जब किसी बड़े मानवीय पहलू पर संकट के बादल छायें हो तो कवि गरजने भी लगता है, व्यंग्य भी करता है। कश्मीर पर बुरी नज़र रखने वालों का वह मुँह काला करता है। भारत के गुणों पर गर्व करने वाला

कवि साम्राज्यवादी चालों से, युद्ध की विभीषिका से, अमेरिकी बाज़ार से अंजान नहीं है। इसीलिए वह अपने पाठकों को सावधान भी करता है। उसकी बात और अधिक प्रखर हो जाती है यदि गंगा-जमुनी तहज़ीब से जुड़े सवालों पर कोई प्रहार करता है। चाहे फिर भाषा का मुआमला हो या मज़हब का या फिर लिपि का कवि की आवाज़ अधिक मुखर हो जाती है। कभी-कभी सामयिक मुद्दों पर भी कलम चलाता है और जनता के आंदोलन में अपना स्वर भी जोड़ देता है। घिर गए समय के रथ को वह शान्ति की ओर मोड़ देता है और अमन चैन का राग गाता है। देश के एकांकी हाथ को थामने का भाव भी कवि में सन्निहित है। किन्तु दीर्घजीवी समस्याएँ उसके लिए अधिक महत्वपूर्ण रही हैं। और सौन्दर्य की खोज भी कम महत्वपूर्ण नहीं रहीं।

शमशेर ने कला के भवन में जो पेड़-पौधे लगाए हैं, वे हरे-भरे भी हैं और सुन्दर भी। अर्थात शमशेर प्रकृति से बातचीत करते रहे हैं, उसे पुनर्सृजित करते रहे हैं। प्रकृति की स्वच्छन्दता उन्हें प्रिय है। प्रकृति के परिवर्तित सौन्दर्य को वह अपनी कला का आधार बनाते हैं, उनकी भरी-पूरी गति को चित्रित करते हैं। प्रकृति से ही प्रेम की, जीवन की, ऊर्जा ग्रहण करते हैं। जड़-चेतन के बीच वह लगातार आवाजाही करते रहते हैं, अर्थात् जनता और उनके बीच संवाद चलता रहता है। प्रकृति के रंग-रूप-राग में भी वह अपने को तथा अन्य को पाते रहे हैं। गंध, रंग, स्पर्श, ध्वनि, रेशमी उनके जीवन की भरी-पूरी गति को समेटे हुए है। जल, अग्नि, आकाश वायु तथा पृथ्वी के कई रूप शमशेर के काव्य में मौजूद हैं और शमशेर उन रूपों में मौजूद है। अतः शमशेर की कला के रूप-पक्ष की विवेचना महत्वपूर्ण होगी।

अध्याय पाँच

शमशेर की कविता

का

रूप-विन्यास

5.1 बिम्ब

5.2 रंग

5.3 लय

5. शमशेर की कविता का रूप-विन्यास

"तुम्हारा सुडौल बदन एक आबशार है
जिसे मैं एक ही जगह खड़ा देखता हूँ
ऐसा चिकना और गतिमान
ऐसा मूर्त सुन्दर उज्जवल"[1]

शमशेर की कविता का जो दूसरा खण्ड है, वह है कला में रूप-विन्यास। इसलिए शमशेर की कला के रूप-विन्यास की विवेचना से पहले कला में रूप की स्थिति को भी जान लिया जाये। बच्चन सिंह जी लिखते हैं- "रूप की अभिव्यक्ति वस्तु है जो रूप से अलग नहीं है। वस्तुतः जिसका 'पैराफ्रेज' हो सकता है; वह कला-रूप नहीं है। रूप से अलग वस्तु विश्लेष्य नहीं हो पाती। वस्तु रूप में आद्यांत व्याप्त है। रूप को निचोड़ कर वस्तु की प्राप्ति संभव नहीं है। विषय और वस्तु में अलगाव किया जा सकता है। एक ही विषय को लेकर रचना करने वाले विभिन्न व्यक्ति अपने देशकाल, व्यक्तित्व, दृष्टिकोण के आधार पर अलग-अलग वस्तुओं का निर्माण करते हैं।"[2]-अर्थात भारतीय आलोचक मानते रहे हैं कि वस्तु और विषय में अंतर हो सकता है किन्तु रूप से वस्तु को अलगाया नहीं जा सकता।

शमशेर के सम्बन्ध में कविवर मुक्तिबोध ने लिखा है- "शमशेर एक समर्पित कवि हैं। उन्होंने अपने जीवन का सर्वोत्तम भाग और प्रदीर्घ काव्यक्षण काव्यसाधना में बिताए हैं- निःस्वार्थ भाव से, यशःप्रार्थी न होकर। शमशेर की आत्मा ने अपनी अभिव्यक्ति का एक प्रभावशाली भवन अपने हाथों तैयार किया है। उस भवन में जाने से डर लगता है-उसकी गंभीर प्रयत्नसाध्य पवित्रता के कारण! भाषा के विकास-स्तर का नीचापन, अपने अनुकूल सिद्ध हो सकने वाली और सहायता दे सकने वाली किसी परम्परा का अभाव, रसज्ञ आलोचकों और मर्मज्ञ पाठकों के स्थान पर विरोधी वातावरण, आदि अनेक असुविधाओं और कठोर उपेक्षाओं के बीच, जिस आत्मा ने दुर्निवार रूप से, दुनिया की परवाह न करते हुए, सस्ती ख्याति के चक्कर में न पड़कर, जो अभिव्यक्ति-शिल्प तैयार किया वह हिन्दी साहित्य को एक अनूठी देन है। शमशेर, निःसंदेह, एक अद्वितीय कवि हैं। उनकी काव्य-आत्मा

---

1 प्रतिनिधि कविताएँ, प्रेयसी, पृ. 186

2 आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, पृ. 93

नितांत स्वाभाविक है, बिलकुल खरी है, साथ ही रसमय होते हुए उलझी हुई, उतनी ही उलझी हुयी, जितनी कि और जैसे कि, प्रत्येक वास्तविकता, अपनी मौलिक विशिष्टता में उलझी हुई होती है।"[1]-जिसकी काव्य-आत्मा स्वाभाविक, खरी, रसमय हो, किन्तु वास्तविक हो, उसमें उलझाव भी स्वाभाविक है। संभवतः इसीलिए सूरज पालीवाल जी को लिखना पड़ा- "शमशेर की पहचान कवि रूप में है और कवि भी सामान्य नहीं, दुरूह कवि, जिसे उनकी कविताओं में आये शब्दों में नहीं, शब्दों के पीछे कवि की संवेदना और उसके गहरे जीवनानुभवों की अनुभूति के साथ ही समझा जा सकता है।"[2]- इस उद्धरण में जो ध्यान देने योग्य शब्द है, वह है 'दुरूह कवि'। शमशेर के बारे में यह आम धारणा रही है कि वह 'दुरूह कवि' हैं। इसलिए पहला प्रश्न तो यही है कि शमशेर की कविता को कैसे समझा जाये, विशेषतः रूप-विन्यास को? दुरुहता का प्रश्न उतना ही पुराना है; जितना कि शमशेर की कविता। इस प्रश्न से एक ओर तो यह हुआ कि शमशेर पर लिखा ही कम गया और दूसरी तरफ जिन्होंने लिखा वे शमशेर की कविता के एक पक्ष को तो हमेशा उदघाटित करते रहे किन्तु दूसरे पक्ष की उपेक्षा बरकरार है। इसका परिणाम यह हुआ कि शमशेर की कविता को गंभीरता से समझने तथा उसे सही परिप्रेक्ष्य में रखकर मूल्याँकन करने की कोशिश हिन्दी आलोचना में लगभग नदारद है। सच तो यह है कि एक अत्यंत जटिल दुरूह-सी दिखने वाली शमशेर की कविता अपनी पूरी बुनावट में उतनी दुरूह व जटिल नहीं, जितना सामान्यतः समझ लिया जाता है। उनकी हर रचना के तल में एक सीधी-सरल उथल-पुथल होती रहती है और इस उथल-पुथल का भावात्मक तथा वैचारिक आवेग कभी भी उस दृश्य तक सीमित नहीं होता, जिसे रसमय शब्दों से चित्रण किया जा रहा है। यद्यपि पहली ही नज़र में कवि प्रभाव यही डालना चाहता है कि वह एक विशेष दृश्य का चित्रण कर रहा है। रसमय शब्द के चित्रण पर बल इसीलिए दिया जा रहा है क्योंकि शमशेर अपनी कविता में वर्णन लगभग नहीं करते। रसमय शब्द के चित्रण की जो भारतीय परम्परा रही है, शमशेर उसे विकसित कर रहे हैं। रूप या शिल्प के स्तर पर यह पहला बिंदु है; जो शमशेर को अपने समकालीनों से अलग करता है। शमशेर की इस विशेषता का उदघाटन होते ही आगे का मार्ग खुल जाता है। देखना

---

1 शमशेर: मेरी दृष्टि में,-मुक्तिबोध(समकालीन हिन्दी आलोचना, पृ. 86)

2 hindikunj.com/2009/08/blog-post-18.htm#comment-form

होगा कि 'शमशेर की आत्मा ने अपनी अभिव्यक्ति का प्रभावशाली भवन अपने हाथों तैयार किया है 'तो उसे किन रंगों से चित्रित किया है तथा कौन-से-सुन्दर दृश्य उपस्थित किये हैं। और इससे अधिक हम उनके 'अभिव्यक्ति-शिल्प' को कितना समझ पाये हैं। शमशेर को समझना इसलिए भी आसान नहीं है क्योंकि शब्दों की लीला उनके यहाँ निरंतर बनी रहती है। बावजूद इसके शमशेर के रसमय-बिम्बों को देखना उचित होगा। परन्तु पहले बिम्ब सम्बन्धी बातें स्पष्ट हो जाये तो सुविधा रहेगी।

5.1. बिम्ब

"रह गया-सा एक सीधा बिम्ब
चल रहा है जो
शांत इंगित-सा
न जाने किधर ।"[1]

शमशेर की कविता का यह शांत इंगित-सा चल रहा एक सीधा बिम्ब किस दिशा में पहुंचेगा, स्पष्टतः नहीं कहा जा सकता। इसलिए पहले बिम्ब की बातें। भारतीय चिन्तक मानते रहे हैं कि कविता मूर्त भी होती है। संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा के अनुसार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कविता में विभावन-व्यापार को महत्वपूर्ण माना है। बिम्ब-योजना को उन्होंने विभावन-व्यापार के अंतर्गत माना है और चित्रण को उसका मुख्य धर्म बतलाया है। इसके साथ ही वे लिखते हैं- "काव्य में अर्थ-ग्रहण मात्र से काम नहीं चलता, बिम्ब ग्रहण अपेक्षित होता है। यह बिम्ब ग्रहण निर्दिष्ट, गोचर और मूर्त विषय का ही हो सकता है।...मनुष्येतर बाह्य प्रकृति का आलंबन के रूप में ग्रहण हमारे यहाँ संस्कृत के प्राचीन प्रबंध-काव्यों के बीच-बीच में ही पाया जाता है। वहाँ प्रकृति का ग्रहण आलंबन के रूप में हुआ है, इसका पता वर्णन की प्रणाली से ही लग जाता है। पहले कह आये हैं कि किसी वर्णन में आयी हुई वस्तुओं का मन में ग्रहण दो प्रकार का हो सकता है-बिम्ब ग्रहण और अर्थग्रहण।...बिम्बग्रहण वहीं होता है जहाँ कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग-प्रत्यंग, वर्ण, आकृति तथा उनके आसपास की परिस्थिति का परस्पर संश्लिष्ट विवरण देता है। बिना अनुराग के ऐसे सूक्ष्म ब्योरों पर न दृष्टि जा सकती है, न ही रम सकती है। अतः जहाँ ऐसा पूर्ण और संश्लिष्ट चित्रण मिले, वहाँ समझना चाहिए कि कवि ने बाह्य प्रकृति को आलंबन के रूप में ग्रहण किया है।"[2]- इसीलिए आचार्य शुक्ल ने मूर्ति-विधान को कल्पना की श्रेणी में रखते हुए, काव्य के साधन के रूप में स्वीकार किया है तथा भाव-संचार की क्षमता न होने पर काव्य से बाहर रखा है। केदारनाथ सिंह जी ने बिम्ब को परिभाषित करते हुए लिखा है- "काव्यगत बिम्ब वह शब्द-चित्र हैं, जो ऐन्द्रिय गुणों से अनिवार्य रूप से समन्वित होता है।" फिर वे लिखते हैं 'पर यह परिभाषा भी पूर्ण न हुई क्योंकि कभी-कभी

---

1 कुछ कविताएँ, एक नीला आइना बेठोस, पृ. 13

2 चिंतामणि, पृ. 85-86

पत्रकार भी किसी समाचार को ऐसे संवेदनात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं कि उनमें ऐन्द्रिय गुणों का समावेश हो जाता है। फिर काव्यगत बिम्ब और पत्रकार के बिम्ब में अंतर क्या हुआ?...उसकी (बिम्ब) स्थिति काव्य के अतिरिक्त संगीत, चित्रकला और मूर्तिकला इत्यादि में मानी जाती है। इस प्रकार उसका क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है।"[1] -बिम्ब को परिभाषित करने के और भी प्रयास हुए हैं। प्रभाकर श्रोत्रिय जी तो बिम्ब को काव्यभाषा की तीसरी आँख ही मानते हैं। काव्य की तीसरी आँख की छानबीन करते हुए वे लिखते हैं- "बिम्ब में वर्णन प्रधान नहीं होता, अनुभूति प्रधान होती है और कहीं-कहीं बिम्ब के भीतर से एक संवेदित कथा का जन्म होता है, जो बिम्ब से इतनी संश्लिष्ट होती है कि स्वयं बिम्ब-रूप हो जाती है।"- अपने लंबे विश्लेषण के बाद वह निष्कर्ष निकालते हैं कि 'कतिपय वर्गीकरण की चर्चा के बावजूद मैं यह मानता हूँ कि बिम्ब पूरी तरह वर्गीकृत नहीं किये जा सकते। मानवीय संवेग, संसार में फैले अनंत रूप और अभिव्यक्ति की भंगिमाओं की कोई सीमा नहीं है। इसलिए बिम्बों की बनावट और संख्या भी निश्चित नहीं की जा सकती।"[2]- इतने स्पष्ट शब्दों के बाद तो यही कहा जा सकता है कि शब्द के रसमय चित्रण से जो दृश्य बनते हैं उनकी झलक पाना रुचिकर होगा। शमशेर के शब्द-चित्र जो रसमय दृश्य बनाते हैं उनका वर्गीकरण संभव नहीं। क्योंकि शमशेर की सृजन-प्रक्रिया जटिल है। अतः कुछ कविताओं के आधार पर उन्हें समझने का प्रयास किया जाये।

शमशेर के बारे में प्रभाकर श्रोत्रिय जी लिखते हैं- "शमशेर की कविता के चित्रों में उनका मनस्तत्व अधिक सक्रिय रहता है, वे बिम्बों को मानस अवधारणा में बदलकर उनमें विलक्षणता पैदा करते हैं। कवि के मनस्तत्व की सक्रियता पाठक में भी संरचित होती है, और वह अपनी कल्पना के लिए कवि से एक छूट ले लेता है, या कहें, कवि उसे विशेष छूट देता है।"[3]- इस दृष्टि से देखें तो शमशेर ने जो चाक्षुष बिम्ब दिए हैं, उनमें भी उनका मनस्तत्व अधिक सक्रिय है। उदाहरण के लिए एक छोटी कविता प्रस्तुत है-

"*जो कि सिकुड़ा हुआ बैठा था, वो पत्थर*

---

1 हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ. 355-356

2 कविता की तीसरी आँख, पृ. 34-36

3 शमशेर: भावसाध्य पावनता(संवाद, पृ. 45)

सजग-सा होकर पसरने लगा
आप से आप''[1]

'सुबह' कैसे होती है यह बताने के लिए कवि ने पत्थर का बिम्ब चुना है। सुबह होते ही जिस प्रकार अँधेरा छंटने लगता है और धीरे-धीरे प्रकाश का विस्तार होता जाता है; उसी प्रकार पत्थर के बिम्ब द्वारा कवि ने अपने मनस्तत्व की झलक दे दी है। पत्थर या पहाड़ के और भी बिम्ब हैं, जिनका प्रयोग शमशेर ने विभिन्न सन्दर्भों में किया है-

''*मुझको प्यास के पहाड़ों पर लिटा दो जहाँ मैं*
एक झरने की तरह तड़प रहा हूँ ।''[2]

पहाड़ का यह बिम्ब शमशेर के अवसाद को दिखलाता है। किन्तु ऐसा भी नहीं है कि पहाड़ के बिम्ब अवसाद लिए ही आते हों। यह बिम्ब भी देखिए-

''*एक आदमी दो पहाड़ों को कुहनियों से ठेलता*
पूरब से पश्चिम को एक कदम से नापता
बढ़ रहा है ।''[3]

देखने वाली बात यह है कि दो पहाड़ों को किसी के द्वारा ठेला जा रहा है। जो मनुष्य के विराट संघर्ष को दिखलाता है।

'ओ मेरे घर' शीर्षक कविता में वर्तमान समाज के जिन भयानक बिम्बों को अभिव्यक्त किया गया है। उनमें से एक यह है-

''*और दी मुझे एक लंबे नाटक की*
हँसी
फैली हुई
दर्शकशाला इस छोर से उस छोर तक
लहराती कटु-क्रूर''[4]

---

1 कुछ कविताएँ, सुबह, पृ. 36

2 कुछ और कविताएँ, टूटी हुई, बिखरी हुई, पृ. 52

3 कुछ और कविताएँ, एक आदमी दो पहाड़ों को कुहनियों से ठेलता, पृ. 7

4 इतने पास अपने, ओ मेरे घर, पृ. 20

यह लहराती हुई कटु-क्रूर हँसी जिस तरह से हमारे कानों में गूंजने लगती है उससे स्पष्ट होता है की पूँजीवादी समाज की यह हृदयहीन और अमानवीय हँसी कानों में बज रही है। ध्वनि-बिम्ब की दृष्टि से शमशेर की यह कविता महत्वपूर्ण है। पूँजीवाद जिस तरह से मनुष्य के अस्तित्व को ही खतरे में डाल रहा है। उसे स्पष्ट करता है यह दृश्य-बिम्ब-

"जिस पर मैं हूँ: हम दोनों कितने
अकेले इस विश्व में! एकदम कितने
अकेले-दूऽर सबसे.....सबसे!"[1]

कवि और पृथ्वी का अकेलापन इतना गाढ़ा हो जाता है कि कवि इस हमारी पृथ्वी के अंत की कल्पना मात्र से कांप जाता है। यह दृश्य-बिम्ब जितना सूक्ष्म है उतना ही विराट भी है। दृश्य या चाक्षुष बिम्ब का एक और सफल प्रयोग 'मेरे समय को...' शीर्षक कविता में देखा जा सकता है-

"शतरंज का एक खाना है
जिसमें तुम मुझे ऊपर उठाकर रखते हो
हवा में कुछ देर अंगूठे और अँगुलियों के बीच
अनिश्चय में थामे हुए"[2]

'रुके हुए साँस की' जो विवशता व्यक्त हुई है, वह शतरंज के एक मोहरे की तरह हवा में झूलती हुई हमारी आँखों से गुज़रती रहती है। उपर्युक्त तीनों कविता ध्वनि तथा चाक्षुष-बिम्बों के सफल प्रयोग कहे जा सकते हैं। जिनसे पाठक बेचैनी महसूस करता है। पूँजीवाद ने जिस तरह व्यक्ति को वस्तु बना दिया है शमशेर उसी स्थिति को अपने अंदाज़ में बयान करते हैं। 'लहराती कटु-क्रूर हँसी' की ध्वनि तथा 'अकेले-दूऽर सबसे...सबसे' के ध्वनि शेड्स अद्भुत हैं।

शमशेर की भाषा को 'सामजिक यथार्थपरक भाषा' के रूप में नहीं समझा जा सकता। क्योंकि उनकी काव्य-भाषा संश्लिष्ट है, जिसमें उनकी अनुभूति के रेशे-रेशे गुंथे हुए हैं। इसलिए शमशेर के इस वक्तव्य को ध्यान में रखना होगा- "अपनी कविता में मेरी ख़ास कोशिश रही है कि हर चीज़ की, हर भावना की को एक अपनी भाषा होती है, जिसमें वह

---

1 इतने पास अपने, हमारी ज़मीन, पृ.21

2 इतने पास अपने, मेरे समय को..., पृ.41

कलाकार से बातें करती है, उसको सीखूँ।"[1]-शमशेर की यही कोशिश उन्हें दूसरे कवियों से अलग करती है तथा उन्हें सौन्दर्य के गतिशील रूप का कवि बनाती है। 'उषा' का यह चित्र देखिए-

प्रातः नभ था बहुत नीला शंख जैसे
भोर का नभ
राख से लीपा हुआ चौका
(अभी गीला पड़ा है)"

"प्रातः कालीन अर्थात रात के अन्तिम पहर को बताने के लिए कवि ने उसकी नीलिमा के लिए शंख का बिम्ब लिया है। शंख मंगल का प्रतीक है और ध्वनि को लिए हुए है। उषा का निलिमा भरा आकाश चाक्षुष आनंद देता है। किन्तु वह रात के अन्तिम पहर की कालिमा लिए हुए है। जैसे राख से लीपे हुए चौके में नमी तथा ताज़गी कुछ देर बनी रहती है वैसे ही भोर का नभ है। उषा का यह चित्र एक साथ चाक्षुष व स्पर्श बोध कराता है। इस कविता में कवि ने गतिशील चित्र भी दिये हैं-

"और...
जादू टूटता है इस उषा का अब
सूर्योदय हो रहा है ।"[2]

सूर्योदय होते ही उषा की नाटकीयता समाप्त हो रही है और उसका चकित और भ्रमित करने वाला जादू टूट रहा है। गतिशील चाक्षुष-बिम्ब से स्पष्ट हो रहा है कि शमशेर के बिम्बों को सामान्यतः वर्गीकृत नहीं किया जा सकता। इसी तरह 'एक नीला आइना बेठोस' की निम्न-पंक्तियाँ-

"चांदनी में घुल गये हैं
बहुत-से तारे बहुत कुछ
घुल गया हूँ मैं
बहुत कुछ अब ।
रह गया-सा एक सीधा बिम्ब
शांत इंगित-सा

---

1 संवाद, पृ. 128

2 कुछ कविताएँ, उषा, पृ. 15

न जाने किधर ।"[1]

'शांत इंगित-सा' चलता यह बिम्ब जिस तरह का चाक्षुष आनंद देता है, वह शमशेर जैसे अविभाज्य काव्य-व्यक्तित्व का सूचक है।

स्पर्श-बिम्ब भी शमशेर के यहाँ कम नहीं हैं। किन्तु उन्हें अलगाना संभव नहीं। चुम्बन से सम्बंधित स्पर्श-बिम्बों में से एक है-

"एक दरिया उमड़कर पीले गुलाबों का
चूमता है बादलों के झिलमिलाते
स्वप्न जैसे पाँव ।"[2]

इसी प्रकार 'मौन आहों में बुझी तलवार' का यह दृश्य-

"मौन आहों में बुझी तलवार
तैरती है बादलों के पार ।
चूमकर ऊषाभ आशा अधर
गले लगते हैं किसी के प्राण ।"[3]

चुम्बन का यह स्पर्श-बिम्ब आशा से भरा हुआ है। अतः नरेंद्र वशिष्ठ जी का यह संक्षिप्त कथन उचित है- "स्पर्श-बिम्ब शमशेर के यहाँ कम हैं। ये बिम्ब कोमल और कठोर दोनों ही प्रकार के स्पर्श-संवेदन लिए हुए हैं। शमशेर के यहाँ मुलायम बाहों का अपनाव है तो प्रेमिका के बालों में बारीक तारों की चुभन भी। ध्यान देने की बात है कि उनके ज्यादातर स्पर्श-बिम्ब चुम्बन से सम्बंधित हैं।"[4]- यह स्वीकारते हुए भी स्पर्श बिम्ब का एक और उदाहरण प्रस्तुत है-

"एक सोने की घाटी जैस उड़ चली
जब तूने अपने हाथ उठाकर
मुझे देखा
एक कमाल सहस्रदली होठों से
दिशाओं को छूने लगा

---

1 कुछ कविताएँ, एक नीला आइना बेठोस, पृ. 13

2 कुछ कविताएँ, पूर्णिमा का चाँद, पृ. 14

3 कुछ कविताएँ, मौन आहों में बुझी तलवार, पृ. 26

4 शमशेर की कविता, पृ. 32

जब तूने आँख-भर मुझे देखा ।"[1]

इस पूरे दृश्य में चाक्षुष-बिम्ब के साथ-साथ स्पर्श-बिम्ब भी है। सहस्रदली कमल का अपने होठों से दिशाओं को छूना या स्पर्श करना अद्भुत तो है ही किन्तु रोचक भी है। रोचक इसलिये कि एक ऐसा सहस्रदली कमल जो धीरे-धीरे प्रस्फुटित होता है, दिशाओं तक फैल जाता है। शमशेर की सौन्दर्य-दृष्टि ने एक भरा-पूरा चित्र उपस्थित किया है। जिसमें से कवि का प्रेम छलक जाने को आतुर है।

शमशेर के यहाँ जो शब्द-चित्र हैं, उनमें रंग के, ध्वनि के कई अलग-अलग शेड्स हैं। जो पाठक के कानों को संवेदित करते हैं। 'आधी रात' शीर्षक कविता आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रकृति-संवेदना की दृष्टि से बेजोड़ है। इसकी कुछेक पंक्तियाँ द्रष्टव्य-

"बहुत धीरे-धीरे
बजे हैं बा ऽ रा ऽ....
गिना है रुक रुक कर मैंने
बा र ह बा र
सुनों!
अब भी वैसे ही हवा में
बा रा बज रहे हैं...."[2]

इस पूरी कविता में ध्वनि के भिन्न-भिन्न 'शेड्स' का प्रयोग अनोखा है। प्रथम दो पंक्तियों में दीर्घ ध्वनियों से रात के घिरने का भाव मूर्त होता है। फिर 'रुक-रुक' का प्रयोग और 'बारह बार' के सभी अक्षरों को तोड़कर एक दूसरे से अलग-अलग कर देने पर, रात में भी जग रहे किसी व्यक्ति की शक्ल उभरती है। जो टकटकी लगाए रात को देख रहा है। ध्वनि-बिम्ब का इतना सफल प्रयोग हिन्दी कविता में क्या हो पाया है? दूसरा उदाहरण देखिए-

"मेरी बाँसुरी है एक नाव की पतवार-
जिसके स्वर गीले हो गये हैं,
छप्-छप्-छप् मेरा हृदय कर रहा है....
छप् छप् छप् ।"[3]

---

1 प्रतिनिधि कविताएँ, सौन्दर्य, पृ. 147

2 उदिता, आधी रात, पृ. 35

3 कुछ और कविताएँ, टूटी हुई, बिखरी हुई, पृ. 52

छप्- छप् की कई बार हुई आवृत्ति से महसूस होता है कि व्यंजन संगीत की ध्वनियाँ गति से चल रही हों। जो आखिरी में जा कर उसके स्वर के गीलेपन को और गहरा बना देती है। ध्वनि-बिम्ब का ही एक और उदाहरण 'धूप' कविता से लिया सकता है-

"खसर्-खसर् एक चिकनाहट
हवा में मक्खन-सा घोलती है"[1]

इस कविता में खसर्-खसर् की क्रियापरक ध्वनि से लगता है कि सारा का सारा आकाश दही की हांड़ी बन गया हो और उसमें मथानी चलाई जा रही हो। इसी कविता में अनुरणात्मक बिम्ब भी विन्यस्त है-

"थप्-थप् केले के पाटों पर हातों से
हाथ दिए जाय
थप्-थप्"[2]

हवा के थपेडों से केले के हाट उसके पाटों से टकरा रहे हैं। लगता है मानों कोई ढोलक पर 'थप्-थप्...' मार रहा हो। छोटी-छोटी चीजों में भी अनुरणात्मक बिम्ब रचने वाले कवि को क्या सामान्य कहा जा सकता है।

प्रकृति-संवेदना के जितने चित्र शमशेर ने बनाए हैं, वे अतुलनीय हैं। जिसके बारे में डॉ. अपूर्वानंद लिखते हैं- "डॉ. रामविलास शर्मा की धारणा के विपरीत सच तो यह है कि शमशेर ने प्रकृति के कुछ अत्यंत अछूते बिम्ब और उनसे जुड़ी हुई अपनी ख़ास संवेदना के चित्र हिन्दी कविता को दिए हैं, जो उनके अलावा और कहीं नहीं मिल सकते थे। जैसे इस चाँद को देखिए-

"संवलाती ललाई में लिपटा हुआ
काफी ऊपर
तीन चौथाई खामोश गोल सादा चाँद।"

आगे चलकर यह चाँद जब कवि के मन में गहरा उतर जाता है, तो यह बिम्ब मिलता है-

"रात में ढलती हुई तमतमायी-सी
लाजभरी शाम के

---

1 कुछ कविताएँ, धूप, पृ. 54

2 कुछ कविताएँ, धूप, पृ. 55

अंदर
वह सफेद मुख
किसी ख्याल के बुखार का ।"

रात के बावजूद चाँद अब भी चाँद है, पर वह अपना रूप छोड़कर एक संवेदना में बदल जाता है।"[1]-शमशेर के अछूते चाक्षुष-बिम्ब निःसंदेह पाठकों की इन्द्रियों को खोलते हैं। 'य' शाम है' शीर्षक कविता का यह दृश्य इस दृष्टि से देखने योग्य है-

"य' शाम है
कि आसमान खेत है पके हुए अनाज का ।
लपक उठीं लहू-भरी दरातियाँ-
-कि आग है :"[2]

आसमान में पके हुए अनाज का खेत देख रहे पाठक का व्यंग्य है उन पर जो आसमान में भी फ्लैट बनाने का ख्वाब देख रहे हैं। जब पूँजीपति आसमान में फ्लैट खरीद सकता है तो कवि उसमें किसानी भी कर सकता है। चाक्षुष-बिम्बों के लिहाज से शमशेर खरे हैं, और खरी हैं उनकी कविता-विभिन्न बिम्बों के साथ। चाक्षुष-बिम्ब का एक और नज़ारा देखिए-

"सूना-सूना पथ है, उदास झरना
एक धुंधली बादल-रेख पर टिका हुआ
आसमान
जहाँ वह कली युवती
हँसी थी ।"[3]

इस टटके चाक्षुष-बिम्ब में सुनसान रस्ते का भरा-पूरा दृश्य उभरता है। जिसमें आसमान एक धुंधली बादल-रेखा पर टिका हुआ है। किन्तु जैसे काली युवती की हँसी अब भी वहाँ सुनाई पड़ रही हो।

ऐन्द्रिय-संवेदन की दृष्टि से शमशेर एक साथ कई बिम्ब उपस्थित करते हैं। जिन्हें मिश्रित-बिम्ब भी कहा जा सकता है। 'टूटी हुई, बिखरी हुई' का यह दृश्य-

"एक फूल ऊषा की खिलखिलाहट पहनकर

---

1 सुन्दर का स्वप्न, पृ. 216

2 कुछ कविताएँ, य' शाम है, पृ. 32

3 कुछ और कविताएँ, सूना-सूना पथ है उदास झरना, पृ. 48

रात का गड़ता हुआ काला कम्बल उतारता हुआ
मुझसे लिपट गया ।"[1]

ऊषा की खिलखिलाती हँसी को एक फूल पहने हुए है। स्वयं नर्म होने के बावजूद वह रात में गड़ते हुए कम्बल को पहने रहा है। किन्तु अब काले कम्बल को उतार कर कवि से लिपट गया। एक साथ रंग, गंध, स्पर्श, स्वर आदि ऐन्द्रिय संवेदनाएँ इन पंक्तियों में उभर आयी हैं। इसी कविता की इन पंक्तियों को भी देखा जा सकता है-

"*एक खुशबू जो मेरी पलकों में इशारों की तरह*
बस गई है, जैसे तुम्हारे नाम की नन्हीं-सी
स्पेलिंग हो, छोटी-सी प्यारी-सी, तिरछी स्पेलिंग,"[2]

इन पंक्तियों को खोलती हुई डॉ. रंजना लिखती हैं- "बात कैसे आरम्भ करते हैं- खुश्बू का पलकों में बसना। यह रोमांटिक कल्पना अपने आप में वायवीय है। फिर कैसे-इशारों की तरह सारे पूर्व-संकेत, अब भी कवि के लिए सुगन्धित हैं। वे बासी नहीं हुए हैं। वे गंधमय सारे संकेत कवि की पलकों में बस गये हैं। अब आगे जो बात कही गयी है वह संभवतः 'इशारों' से सम्बंधित है। अंग्रेज़ी में जिसे 'साइन' कहते हैं। साइन-अर्थात व्यक्ति के हस्ताक्षर नाम का एक अंश। प्रायः लोग 'तिरछे' ढंग से लिखते हैं। इस साइन करने के ढंग में ही व्यक्ति का बहुत-कुछ बोलता है, फिर साइन यानी नाम की 'स्पेलिंग' का एक अंश-उसी में वस्तुतः पूरा नाम समाया हुआ है। इसी तरह पूरा भूतकाल कवि की पलकों में बस गया है- एक संकेत रूपी सुगंध में। उसी एक सुगंध में पूरा समय वह सिमटा हुआ है। वे सारे संकेत कवि की पहचान बन गये हैं। कवि के पूरे जीवन में ये सारे गंधमय संकेत वैसे ही उभरकर उपस्थित हैं, जैसे किसी की तिरछी स्पेलिंग-क्योंकि 'हस्ताक्षर' ही किसी भी पत्र को वज़न देते हैं।"[3]

---

1 प्रतिनिधि कविताएँ, टूटी हुई, बिखरी हुई, पृ. 110

2 प्रतिनिधि कविताएँ, टूटी हुई, बिखरी हुई, पृ. 112

3 कवियों का कवि शमशेर, पृ. 59-60

स्पष्ट है शमशेर के बिम्बों में जितनी विविधता है, वह अन्यत्र संभवतः नहीं मिलेगी। मिश्रित बिम्बों के और भी सफल प्रयोग शमशेर ने किये हैं। 'आओ' कविता की निम्न पंक्तियाँ-

"तैरती आती है बहार
पाल गिराए हुए
भीने गुलाब-पीले गुलाब के ।"[1]

इन पंक्तियों में तीन ऐन्द्रिय-संवेदन एक ही बिम्ब में समाहित हो गये हैं। 'तैरती आती है बहार' में ध्वनि, 'पाल गिराए' में चाक्षुष तथा 'भीने गुलाब-पीले गुलाब' में गंध रंग के साथ उपस्थित है। 'सागर-तट' में रस तथा चाक्षुष संवेदन सक्रिय है-

"पी गया हूँ दृश्य वर्षा का :
हर्ष बादल का
हृदय में भरकर हुआ हूँ हवा-सा हल्का:"[2]

बरसात जो देखने की चीज़ है कवि उसे पी गया है तथा बादल की खुशी को हृदय में भरकर हवा-सा हल्का हो गया है। पूरे दृश्य में रस तथा चाक्षुष बिम्ब एक साथ देखे जा सकते हैं। 'दूब' की खुशबू और छुअन को कवि इस प्रकार महसूस करता है-

"पलकों पर हौले-हौले
तुम्हारे फूल-से पाँव"[3]

पलकों पर धीरे-धीरे प्रेमिका के फूल से पैर को महसूस करना शमशेर की संवेदनशीलता को दर्शाता है। गंध और स्पर्श-बिम्ब के मिश्रण को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है।

शमशेर के ऐन्द्रिय-संवेदन को उन कविताओं में भी देखा जा सकता है जो कलाओं पर या विधाओं पर लिखी गयी हैं। रंजना जी लिखती हैं- "शमशेर की कुछ कविताएँ पूरी की पूरी बिम्बात्मक हैं। 'ऊषा' की बात जो की जा चुकी है। इसके अतिरिक्त 'घिर गया है

---

1 कुछ कविताएँ, आओ, पृ. 58

2 कुछ कविताएँ, सागर तट, पृ. 29

3 कुछ कविताएँ, दूब, पृ. 28

समय का रथ', 'धूप', 'सागर-तट', 'सौन्दर्य', 'चेहरे की शामों में'। इसमें उन कविताओं का समावेश भी होता ही है जो किसी का चित्र देखकर लिखी गयी हों- जैसे 'वॉन गॉग का एक चित्र', 'एक स्टिल लाइफ', 'विजय सोनी के चित्र', 'रावल गोस्वामी के चित्र'। एक विस्तृत आयाम में देखें तो प्रायः उनकी सभी कविताएँ उसमें आ सकती हैं, क्योंकि शमशेर की रचना-प्रक्रिया बिम्बों में खुलती-खिलती है, यह देखा जा चुका है।"[1]- इतना ही नहीं शमशेर की इन कविताओं का भी उल्लेख होना चाहिए जो साहित्यिक या कला विधाओं पर हैं तथा जो किसी व्यक्ति-विशेष पर केंद्रित हैं और इन सबसे अधिक जो 'तथाकथित राजनीतिक' कही जाती हैं। मसलन का. रुद्रदत्त का यह चित्र-

"वह हँसी का फूल-
ऊषा का हृदय
बस गया है याद में: मानो
अहिर्निश
साँस में एक सूर्योदय हो !"[2]

ऊषा का हृदय, हँसता-खिलखिलाता फूल कवि की याद में बस गया है। जो कवि को नयी चेतना से भर देता है तथा साँस में सूर्य की तरह रोशनी लेकर आता है। क्या यह चाक्षुष-बिम्ब की श्रेणी में नहीं आता ! या फिर 'वाम वाम वाम दिशा' का यह शब्द-चित्र-

"किन्तु उधर
पथ-प्रदर्शिका मशाल
कमकर की मुट्ठी में-किनुत उधर :
आगे-आगे जलती चलती है
लाल-लाल"[3]

या फिर शमशेर की इस खीझ में चाक्षुष आनंद नहीं है-

"यह किसने दाँत निकले हैं!

---

1 कवियों का कवि शमशेर, पृ. 56

2 बात बोलेगी, का. रुद्रदत्त की शहादत की पहली वर्षी पर, पृ. 66

3 बात बोलेगी, वाम वाम वाम दिशा, पृ. 64

यह किसने आँखें उपर कीं!
यह किसने लट्ठ संभाले हैं!
यह किसकी खोपड़ियाँ तड़कीं?!"[1]

'धर्म' और 'मज़हब' बालों के ये दाँत कितने भयावह हैं। इस तरह के बिम्ब भी शमशेर के यहाँ कम नहीं हैं। और उन असंबद्ध बिम्बों की संख्या भी कम नहीं है, जिनका जिक्र नरेंद्र वशिष्ठ जी ने किया है। वे लिखते हैं- "ग़ज़ल का हर शेर एक स्वतन्त्र बिम्ब प्रस्तुत करता है जिसके कारण पूरी ग़ज़ल असंबद्ध बिम्बों की रचना बन जाती है।'-यह असम्बद्धता वे इन कविताओं में भी देखते हैं- 'ये लहरें घेर लेती हैं' में लहरों के बेचैन आवर्त के बाद 'दीर्घ समतल मौन' को विन्यस्त किया गया है; 'सींग और नाखून' में सींग, नाखून, लौह बख़्तर, सीने की हड्डी के पथराये बिम्बों के बाद 'घास काई की नमी' को रखा गया है और 'शिला का खून पीती थी' में मृत्युबोध जगाने वाले बिम्ब के विरोध में 'सीढ़ियाँ थीं बादलों की झूलती, टहनियों-सी' का चित्र ले आया गया है जिसमें जीवन की संभावना की ओर संकेत हैं।"[2]- स्पष्ट ही ये बिम्ब भी हैं।

शमशेर के रसमय शब्द-चित्रों से स्पष्ट है कि उनके यहाँ बिम्बों की बहुतायत है। जिन्हें सामान्यतः वर्गीकरण के द्वारा नहीं अपितु रसमयता के आधार पर ग्रहण किया जा सकता है। वैविध्यपूर्ण बिम्ब-सृष्टि को सुविधा के लिए-चाक्षुष, ध्वनि, गंध, स्पर्श, मिश्रित, असंबद्ध, अनुरणात्मक, गतिशील आदि की कोटियों में रखा जा सकता है। घरेलू, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन से सम्बंधित बिम्ब भी शमशेर की कविता में मौजूद हैं- गुलदस्ता, राख, गीला चौका, गीली-मुलायम लटें, रूखे-सूखे बाल, इत्रपाश, काँसे का कटोरा, पोखर, क्रोशिया, झालर बेल, मेहँदी वाले हाथ, दुल्हन, काजल, कुप्पी, ताड़, गायें, चादर, चोली, कोठरी, मकई अथवा नेता, झंडे, दरातियाँ, लट्ठ, मशाल, मजूर, किसान, जन-बल, कराहती धरती, मुट्ठियाँ, गरीब, कांग्रेस, हड़ताल, नारा या फिर कृष्ण, सूर्य, चाँद, मुक्ति का धनंजय, शंख, शक्ति माँ, पञ्च-परमेश्वर, गंगा, काशी, प्रहलाद आदि। और कहीं-कहीं तो पूरी की पूरी कविता बिम्ब प्रवाह लिए हुए है। छोटे-बड़े-मंझोले प्रकार के

---

1 बात बोलेगी, 'धर्म' और 'मजहब', पृ. 51

2 शमशेर की कविता, पृ. 35-36

बिम्ब चाक्षुष आनंद लिए हुए होते हैं। आँखों में घास काई की नमी, सूखती चोलियों के से स्तन, बरसता जिंदा इत्रपाश, धूल में लिपटा हुआ आसमान, चिकनी चाँदी-सी माटी, छिपा-सा निर्जन में अँधेरा बाज़ार, गीली रातों की अगुवाई करने वाली अरागाँ की खुली हुई पुस्तक, आकाश के सरगम में खनिज रंग, सिकुड़ा हुआ पत्थर, बरसता हुआ नीला दरिया, हल्की मीठी चा-सा दिन, शक्ति औ छवि के मिलन का हास, सूखी-भूरी झांड़ियों में व्यस्त पिंडलियाँ, सीने की हड्डी, बादलों की झूलती टहनियों-सी सीढ़ियाँ, दाँत निकाले आँखे ऊपर किये धर्म व मज़हब वाले, चारों ओर सीटियाँ-सी बजाता व्योम, आँखें मीचे धूप की चुस्कियाँ पीता कलाकार, सजाकर रखे दो चौकोर काले व सफेद पत्थर, रात का काला कम्बल उतार कर किसी से लिपटता फूल, ऊषा की खिलखिलाहट पहने एक फूल, पलकों में इशारों की तरह बसी खुशबू, वह सफेद मुख किसी ख्याल के बुखार का, आसमान में पके हुए अनाज का खेत, केले के पातों पर थप्-थप् करती धूप, छप् छप् छप् गीले स्वरों से भरा हृदय, रुक-रुक कर बढ़ती हुई आधी रात, उड़ती सोने की घाटी, स्वप्न जैसे पाँव को चूमता पीले गुलाबों का दरिया, प्रात का नभ बहुत नीला शंख जैसा, राख से लीपा हुआ चौका, शतरंज का मोहरा हवा में थमा हुआ, दर्शकशाल में फैली लहराती कटु-क्रूर हँसी, धुंधली बादल-रेखा पर टिका हुआ आसमान, काली युवती की हँसी, दो पहाड़ों को ठेलते हुए पूरब से पश्चिम को नापता एक आदमी आदि बिम्बों के कुछेक नमूने कहे जा सकते हैं, न कि बिम्बों की कोटियाँ। कुल मिलाकर शमशेर के शब्द-चित्रों में बिम्बों का अद्भुत प्रयोग हुआ है। कह सकते हैं कि शमशेर के रसमय-बिम्ब दर्शकों-पाठकों की नसों को खोलते हैं तथा उनके ऐन्द्रिय संवेदन को नया-ताज़ा करते रहते हैं। बीच-बीच में इन टटके बिम्बों से कवि झाँकता रहता है, जिसे पाठक भी देख सकता है। अतः शमशेर की कविता के सुन्दर रसमय चित्र पाठकों को आमंत्रित करते हैं।

5.2. रंग

"आईनो, रोशनाई में घुल जाओ और आसमान में
मुझे लिखो और मुझे पढो ।"[1]

शमशेर की रोशनाई में कितने रंग घुले हुए हैं। यह देखने से पहले ज्योतिष जोशी जी का यह कथन उल्लेखनीय है- "यह भी गौरतलब है कि शमशेर की कविता रंगों की मोहक दुनिया से लबरेज़ है। भाँति-भाँति के रंग और उनमें कवि का अपना संसार कि जिसमें बहुत कुछ अपनी, कुछ बेगानी बातें गोदी गयी हैं। आप शमशेर की कविता की बनावट पर ध्यान देंगे तो पाएँगे कि भव्य अट्टालिका या शांत निविड़ एकांत मंदिर-सी तराश पर बहुत-सी जगहें खाली हैं जहाज़ बहुत काम अभी बाकी है। अर्थ भरने, सोचने, पश्चाताप करने, अचानक शांत हो जाने और अवाक देखते रह जाने के ढेरों स्थल। सफल चित्रकार की तरह तूलिका में रंगों और रेखाओं का ऐसा समारोह जहाँ संकेतों में ही बहुत कुछ कह जाने की उत्सटता मिलेगी। शमशेर की कविताएँ चित्रकला और कविता के अन्तः संबंधों को जोड़ती है और कविता के संसार को ज्यादा विराट बनाती हैं। यहाँ कविता की ध्वनियों में रगों का तुमुल नाद है जो भीतर तक हिला डालता है।"[2]- सो जाड़े के मौसम में इस शब्द-चित्र की रंगीनियाँ देखिए-

"उड़ते पंखों की परछाइयाँ
हलके झाड़ू से धूप को समेटने की
कोशिश हो जैसे"[3]

प्रीतिकर धूप के इस वर्णन में रंग-बिरंगे पंखों की परछाइयाँ ज़मीन पर ऐसी लग रही हैं मानो धूप को झाड़ू से समेट जा रहा हो। धूप केवल बाहर ही नहीं है अपितु 'धूप मेरे अंदर भी/इस समय तो।' बाहर की धूप को क्या अंदर की धूप से अलग किया जा सकता है! इतना ही नहीं 'धूप कोठरी के आइने में खड़ी' मुस्करा रही है-

---

1 कुछ और कविताएँ, टूटी हुई, बिखरी हुई, पृ. 53

2 शमशेर की कविता का यथार्थ(आलोचना की छवियाँ, पृ. 30)

3 इतने पास अपने, जाड़ों की सुबह के सात-आठ बजे, पृ. 50

"पारदर्शी धूप के परदे
मुस्कराते
मौन आँगन में"

पारदर्शी धूप के पर्दे सुनसान आँगन में उसी प्रकार मुस्कुरा रहे हैं जिस प्रकार कवि के मौन आँगन में। और-

"मोम-सा पीला
बहुत कोमल नभ
एक मधुमक्खी हिलाकर फूल को
बहुत नन्हा फूल
उड़ गई
आज बचपन का
उदास माँ का मुख
याद आता है ।"[1]

नभ की कोमलता बताने के लिए कवि ने मोम-से पीले रंग को चुना है। इस कोमल नभ के नन्हें से फूल को मधुमक्खी जैसे ही हिलाती है, कवि को याद आता है उदास माँ का मुख। कहाँ है ऐसे संश्लिष्ट रंगों का तुमुल नाद।

शमशेर के प्रकृति-चित्रों की रंगीनी को खोल रहे हैं अपूर्वानंद जी- "शमशेर के प्रकृति-चित्र सिर्फ नीले, पीले और काले रंगों से बने हों, ऐसा नहीं। वे हवा में 'सन्-सन् ज्योति के हर तीखे बाण' चलते हुए देखते हैं और उनके यहाँ आकाश-बन सुलगता भी है, उसमें लाल, गौहर और जमुर्रद के निशान उड़ते हुए मिलते हैं। दरअसल प्रकृति उन पर चारों ओर से हमला करके उनकी सारी इन्द्रियों को उत्तेजित कर देती है। वह उनकी मानवीय संवेदना का विस्तार बन जाती है।"[2]-ज़ाहिर है प्रकृति के बिखरे रंग समेटना आसान नहीं है, किन्तु शमशेर यह काम बड़ी आसानी से कर सकते हैं। 'कत्थई गुलाब' शीर्षक कविता का यह दृश्य देखने योग्य है-

"कत्थई गुलाब

---

1 कुछ और कविताएँ, धूप कोठरी के आइने में खड़ी, पृ. 37

2 सुन्दर का स्वप्न, पृ. 217-218

दबाये हुए हैं
नर्म नर्म
केसरिया साँवलापन मानो
शाम की
अंगूरी रेशम की झलक,
कोमल
कोहरिल
बिजलियाँ-सी
लहराए हुए हैं"[1]

इस गुलाब की सुंदरता तथा शमशेर की कविता की विशेषता को ज्योतिष जोशी जी के मुझ से सुनिए- "'कत्थई गुलाब' के इस भव्य और रम्य वातावरण में भला किसे खूबसूरत चित्रकला का दर्शन न होगा। शब्द ऐसे चुने मानों गुलशन की परिक्रमा कर अपनी आँखों में पहले उतारा, फिर सुबह से शाम तक उनके आसपास अपने को समो दिया- तब बनी वह कविता जो एक ही साथ हमें नृत्य की थिरकन, संगीत-सा माधुर्य और चित्र-सी दर्शनीयता दे दे। कविता तो बहुत लिखी गयीं पर क्या किसी ने अंगूरी रोशम की झलक शाम में या गुलाब में देखी है? हम रोज़ जिसे देखते हैं-बिसार देते हैं। वे अपनी पूरी ताज़गी के साथ शमशेर के यहाँ आते हैं-कवि शमशेर का यह भी मतलब है कि उनका संसार हमारे अपने संसार का भूला-भटका संसार है जिसे हम ख्याल बना चुके हैं, कभी-कभी जिसे हम सपना भी बना लेते हैं। लेकिन शमशेर उसे उतार लातें हैं कागजों के बहाने हमारी स्मृति में। हिन्दी की आधुनिक कविता में शमशेर इसलिए भी अकेले पद के अधिकारी हैं।"[2]- उचित है। शमशेर के शब्द-चित्र नाना रंगों से निर्मित हैं। अक्तूबर के हल्के बादल कैसे हैं, यह 'संध्या' शीर्षक कविता में देखा जा सकता है-

"बा द ल अक्तूबर के
हल्के रं गी न ऊदे
मद् धम मद् धम रुकते
रु क् ते- से आ जाते

---

1 इतने पास अपने, कत्थई गुलाब, पृ.17

2 आलोचना की छवियाँ , पृ. 30

इ त ने पास अपने ।"[1]

इस कविता में विलंबित लय के साथ अक्टूबर के बादल जिन रंगों से निर्मित हैं, वे हैं-ऊदे हल्के रंगीन। इसी प्रकार पत्ते 'संध्याभा' में ठहरे हैं।

कवि शमशेर की यह विशेषता है कि वे प्रकृति के रंगों को न केवल नज़दीक से देखते हैं वरन् चित्रित करते समय उन्हें बड़ी बारीकी से अलग भी कर लेते हैं। 'उषा' का यह दृश्यांकन देखिए-

"बहुत काली सिल ज़रा से लाल केसर से
कि जैसे धुल गई हो"

या-

'स्लेट पर या लाल खड़िया चाक
मल दी हो किसी ने"

सूर्योदय से जिस प्रकार बीती रात का रंग धीरे-धीरे मद्धिम पड़ता जाता है उसी प्रकार-

"नील जल में या किसी की
गौर झिलमिल देह
जैसे हिल रही हो ।"[2]

नील जल में 'लाल' अपना रंग बदल कर गौर हो जाता है। संगीत की ध्वनि भी इन पंक्तियों में सुनी जा सकती है। इसी प्रकार 'लहरें/शाम/वह नगर' शीर्षक कविता में सायंकाल के बादलों का चित्रण मिलता है, जिनके बीच से तरह-तरह की रोशनी आ-जा रही है और कई रंग झिलमिला रहे हैं। ये बादल बैंगनी-संदली, भूरे, सुर्मई-सिंदूरी, धुले-साँवले, पीले-गुलाबी, ऊदे-कारे, नीले-गहरे-से मटमैले हैं। रंगों की अपार लीला ही तो है जो शमशेर के शब्द-चित्रों में झिलमिलाती रहती है। तभी तो कगार 'हरा-नीला-सा' है, चिड़िया 'लाल-भूरी' है, काग तमसा-से 'काले' हैं, चाँद 'संवलाती ललाई' में लिपटा हुआ है और धूप 'मूंगा' है। शमशेर के रंगारंग संसार में गोरी 'गुलाबी' 'धूप' है, फाख्ता के बाजू के अंदर का रोआं 'उजला' है, मीठी चुस्की-सा 'दिन' है, दिन 'किश्मशी गोरा' है, बादलों के मौन

---

1 इतने पास अपने, संध्या, पृ. 13

2 कुछ कविताएँ, उषा, पृ. 15

'गेरू-पंख हैं, सूने-सूने पथ में हँसती 'काली' युवती हैं, बरसता हुआ 'नीला' दरिया है, 'पीले' गुलाबों का दरिया है, 'हरी' दूब है।

रंगों का संगीत शमशेर की कविता में किस प्रकार है, यह जानने के लिए परमानंद श्रीवास्तव का यह कथन उल्लेखनीय है- "संवलाती ललाई, हल्की नीलाहट-सी लिए हुए, पारदर्शी नीलहटें, आकाशीय गंगा की झिलमिलाती ओढ़े तन का छंद गत स्पर्श, बादलों के मौन गेरूपंख -रंगों का संगीत शमशेर के यहाँ सुना जा सकता है। यह सामान्य अलंकृति नहीं है- अनुभूति में सजग ऐन्द्रिक विकलता का रचाव है। उन्मुक्तता और गठन इस रचाव के अनिवार्य पहलू हैं। पारदर्शिता और घनत्व के आयामों में सक्रिय शमशेर की काव्य संवेदना कई बार कविता के पाठकों को केवल उत्सुक बनाती हैं वे रचाव में छूटे हुए चिन्हों को टटोलें -दृश्य को पकड़ते हुए अपने को अदृश्य के प्रति भी खुला रखें। वास्तविक आकाश के समक्ष मानवीय आकाश को रचना शमशेर के लिए अगर संभव हो पाया है तो इसी भीतरी खुलेपन के कारण। यह मानवीय आकाश जितना बाहर खुलता है, उतना ही भीतर की ओर भी खुलता है।"[1]- और इस मानवीय आकाश के बाहर-भीतर खुलते है कई रंग। मगर संगीत को लिए हुए। तभी तो-

"ये आकाश के सरगम
खनिज रंग हैं
बहुमूल्य अतीत हैं
या शायद भविष्य ।"[2]

क्या इन खनिज रंगों की परवाह है किसी को? शमशेर के पाठकों के लिए तो इनका महत्व है ही। क्योंकि पाठकों की संवेदनाओं के अपने-अपने रंग शमशेर की कविता में घुले-मिले हैं। देखिए कैसे-

"तुमने मुझे जिस रंग में लपेटा, मैं लिपटता गया:
और जब लपेट न खुले-तुमने मुझे जला दिया ।

मुझे, जलते हुए को भी तुम देखते रहे: और वह

---

1 भाषा का मायावस्त्र और कविता का रूपवाद(समकालीन कविता का व्याकरण, पृ. 40)

2 चुका भी हूँ नहीं मैं, सारनाथ की एक शाम, पृ. 20

मुझे अच्छा लगता रहा ।"[1]

शमशेर की कविता से प्यार करने वाला पाठक जानता है कि उसमें उनकी संवेदनाओं के रंग भी शामिल हैं। आज-कल के अकेलेपन के, कभी-कभी अवसाद के, विरह-मिलन के, प्रेम की आतुरता के, जीवन की विडम्बना के, साहस के, उल्लास और उमंग के, करुणा के, और भविष्य के सपनों के भी रंग पाठकों को संभवतः प्रिय होंगे। छोटे बच्चों को शमशेर की कविता का यह रगं अवश्य प्रिय होगा-

"गोल हैं खूब मगर
आप तिरछे नज़र आते हैं जरा ।
आप पहने हुए हैं कुल आकाश
तारों जड़ा;
सिर्फ मुँह खोले हुए हैं अपना
गोरा-चिट्टा
गोल-मटोल,
आपनी पोशाक के फैलाये हुए चारों सिम्त ।"[2]

'चाँद से थोड़ी-सी गप्पे' हैं या गोया छोटी बच्ची से! यह गोरा-चिट्टा रंग किसे न भाएगा! डॉ. नामवर सिंह ने शमशेर की चित्रशाला के बारे में ठीक ही लिखा है- "इस चित्रशाला में इतने रंगों की लीला है, तरह-तरह के रंगों की इतनी घुलावट है कि सबका विवरण देना लगभग असंभव है। हिन्दी-कविता में रंगों का ऐसा महोत्सव अन्यत्र दुर्लभ है। सचमुच ही 'कवि घंघोल देता है/हिला-मिला देता/कई दर्पनों के जल।"[3]-इसीलिए शमशेर के शब्द-रंग में डूबने के लिए धैर्य की आवश्यकता है। क्योंकि शमशेर की कविता कहती है-

"तो इसमें और कुछ नहीं ।
कोई संगीत नहीं । केवल प्रलाप ।

केवल तम ।

---

1 कुछ और कविताएँ, टूटी हुई, बिखरी हुई, पृ. 55

2 कुछ और कविताएँ, चाँद से थोड़ी-सी गप्पें, पृ. 28

3 कविता की ज़मीन और ज़मीन की कविता, पृ. 165

केवल प्रलाप । केवल मैं और आप । अनाप शनाप ।"[1]

'एक नीला दरिया बरस रहा' है। जो संकोच के साथ कह रहा है- 'केवल मैं आप'। शमशेर की चित्रशाला में पाठक देखेगा कि 'गंदुमी' गुलाब की पंखुड़ियाँ खुली हुई हैं, पर्व 'प्रकाश' है अपना, शेष 'नीला' सूनापन है, सीसे की-सी नीली रात है, गायें-'मैली-सफेद-काली-भूरी हैं, 'मैली' धूली खादी-सा आसमान है, मौन संध्या का दिए टीका रात 'काली' आ गई है; कभी 'काला ताड़', कभी 'खूनी' सड़क या 'खूनी' आँधी चल रही है और कभी 'स्वाति-धार' बरस रही है।

शमशेर की कला पर अक्सर सवाल किये जाते हैं, किन्तु यतीन्द्र मिश्र जी का यह कथन नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है- "एक निश्चित कला को बिना जाने और उससे जुड़े ही कुछ लोग जानने लगते हैं या हम कह सकते हैं कि जानना शुरू होने की प्रक्रिया में स्वयं को शामिल पाना ही उस कला कि 'जनपक्षधरता' है, जो कि उसे सर्वग्राही बनाती है। रंगों को देखते हुए, किसी रंग को पाने की आकांक्षा या संगीत को सुनते हुए, किसी सुर पर अटके रह जाने की स्थिति ही एक आदमी का नहीं, पूरे कला समुदाय का उसमें शामिल होना है। इसी को हम उस कला में, उस व्यक्ति की आवाजाही कह सकते हैं। कलाएँ बस इतने भर आश्वासन से ही निरावधि में अनंत काल तक टिकी रहती हैं।"[2]-इसके बावजूद भी यदि 'जनपक्षधरता' का अलग से सवाल रह जाता है तो शमशेर के इन शब्द-रंगों को देखिए-

"*गरीब के हृदय*
टंगे हुए
कि रोटियाँ *लिए हुए निशान*
लाल-लाल
जा रहे
कि चल रहा

लहू-भरे गवालियर के बाज़ार में जलूस:

---

1 चुका भी हूँ नहीं मैं, एक नीला दरिया बरस रहा, पृ. 13

2 कलाओं का जीवन और उनका जनतंत्र(कला दीर्घा, अप्रैल 2006, वर्ष 6, अंक 12)

जल रहा
धुँआ-धुँआ
गवालियर के मजूर का हृदय ।"[1]

'पीली' शाम से भिन्न 'य' शाम है' का रंग 'लाल-लाल है। जिसमें ग्वालियर के मज़दूर का हृदय जल रहा है। या फिर 'वाम वाम वाम दिशा' शीर्षक कविता का यह दृश्यांश-

"*किन्तु उधर*
पथ-प्रदर्शिका मशाल
कमकर की मुट्ठी में-किन्तु उधरः
आगे-आगे जलती चलती है
लाल-लाल"[2]

'वज्र-कठिन कमकर की मुट्ठी में' लाल-लाल मशाले पथ प्रदर्शिका के रूप में बढ़ती हैं। शमशेर के शब्द-चित्रों का यह रंग भी हैं। जिसकी उपेक्षा अधिकांशतः होती रहती है। ऐसे कई रंग हैं शमशेर की कविता के। मात्र एक विशेष कविता को ही शमशेर की कविता मानना, उनके विविधवर्णी काव्य-संसार की उपेक्षा करना है। प्रेम संवेदना के रंग शमशेर की कविता में भरे-पड़े हैं। कुछेक रंगों को तो पहले ही देख आये हैं। अब दो-एक रंग और भी देखे जा सकते हैं। 'छिप गया वह मुख' का यह रंग देखिए-

"*छिप गया वह मुख*
ढँक लिया जल आँचलों ने बादलों के
(आज काजल रात-भर बरसा करेगा क्या?)"[3]

यह रात-भर बरसने वाला आँखों का काजल जीवन के ट्रेजिक बोध से उपजा है। मानवीय करुणा का यह रंग न केवल अद्भुत है वरन् प्रेम का रंग लिए हुए है। अगर 'पर्व' 'प्रकाश' है अपना तो 'सावन' गुलाबी रंगीनियाँ लिए हुए है। सावन में 'मैली, हाथ की धुली खादी सा है आसमान', जिसमें बादलों का पर्दा 'कहीं-कहीं तो हल्का नील दिया हो' उसकी नीली

---

1 कुछ कविताएँ, य' शाम है, पृ. 33

2 कुछ और कविताएँ, वाम वाम वाम दिशा, पृ. 8

3 कुछ कविताएँ, छिप गया वह मुख, पृ. 27

झाइयाँ मिटती हैं और बनती बहती चलती हैं तो महज इसलिए कि मौन गुलाबी झलक एकाएक उभरकर ठहरी-

"जैसे घोल गया हो कोई गंदले जल में
अपने हल्के-मेहँदीवाले हाथ ।"[1]

रंग-संवेदना को जिस प्रकार कवि महसूस करता है। उसी प्रकार पाठक को भी महसूस करना चाहिए। शमशेर न केवल रंग की संभावना तलाशते हैं वरन् अपने चित्रण से जन्म लेने वाले रंग की भी बात करते हैं। यह बात उपर्युक्त काव्य-पंक्तियों से स्पष्ट है। धूप तो सबने देखी होगी क्या किसी ने ठंडी धुली 'सुनहरी' धूप देखी है या फिर-

"सूखी भूरी झाड़ियों में व्यस्त
चलती-फिरती पिंडलियाँ!
(मोटी डालें, जाँघों से न अड़े!)"[2]

चलती-फिरती पिंडलियों का रंग ऐसा भी होता है। तलवे के रंग क्या किसी ने सोचा है कि मकई-से लाल गेहुँए हो सकते हैं। 'राग' का रंग भी देख लीजिए-

"और मोर दूर और कई दिशाओं से
बोलने लगे...पीयूअ! पीयूअ! उनकी
हीरे-नीलम की गर्दनें बिजलियों की तरह
हरियाली के आगे चमक रहीं थीं ।"[3]

हीरे-नीलम गर्दनों वाले पीयूअ-पीयूअ करते मोर की ध्वनि का रंग भी चित्ताकर्षक है। हरियाली के बीच से चमक रहे मोरों की गर्दन भी क्या कम चित्ताकर्षक है? प्रेम का रंग कैसा भी हो सुन्दर ही होता है।

शमशेर की कला की विशेषताओं को लक्षित करते हुए मधु शर्मा ने ठीक ही लिखा है कि-"शमशेर की कविता में और चित्रों में भी प्रत्यग्रता, तीव्र घनता के गुण अपनी ताज़गी के साथ आये हैं। उनके प्रयोग रंग विन्यास, स्वारोह-अवरोह, पद-लालित्य छोटे फलक पर बहुत कुछ रूपायित करने की क्षमता रखते हैं। उनकी कविताओं में अद्भुत चित्र संभावना है;

---

1 कुछ और कविताएँ, सावन, पृ. 60

2 दूसरा सप्तक, शरीर स्वप्न, पृ. 87

3 कुछ कविताएँ, राग, पृ. 12

उदात्त में ललित की समन्वित अभिव्यक्ति है। वस्तुतः शमशेर की कविता में कलाओं की स्वर-संगति है। उनकी कविताएँ पढ़ते हुए बराबर महसूस होता है कि उनकी चित्रात्मकता किसी प्रविधि का हिस्सा नहीं है, अपितु वह हमारे इन्द्रिय-आस्वाद को पुनर्संस्कारित करने का सशक्त माध्यम बन गई है।"[1]- निश्चित रूप से शमशेर की कविता के रंग-रेखा-लय आदि हमारी जड़ हो चुकी इन्द्रियों के नया-ताज़ा बनाते हैं। 'वॉन गॉग का चित्र' शमशेर की कविता में किन रंगों को लेकर आता है, यह निम्न-लिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है-

"सोने का एक ज्वार उठा
और
गहरे नीले अनगिन पंखों से
नीले अनगिन फेनिल पंखों
उसे ढांप लेना व्यर्थ
उड्डा बवंडर ।"[2]

वॉन गॉग के एक चित्र के रंगों से शमशेर अपने रंगों को विश्लेषित कर रहे हैं। स्पष्ट ही ये पूरे रंग नहीं हैं बल्कि कुछ ख़ास चुने हुए रंग हैं। बावजूद शमशेर की कविता के और भी रंग हैं। महाकवि निराला शमशेर के लिए कौन सा रंग लेकर आते हैं-

"भूलकर जब राह-जब-जब राह...भटका मैं
तुम्हीं झलके,..हे महाकवि,
सघन तम की आँख बन मेरे लिए"[3]

घने अँधेरे की आँख बनकर निराला शमशेर के पास आते हैं और उन्हें रोशनी देते हैं। 'गजानन मुक्तिबोध' तो-

"वह गहरे आसमानी रंग की चादर में लिपटा है
कफ़न सौ जख़्म फूलों में वही पर्दा न हो जाए ।"[4]

---

1 शमशेर की कविता : कलाओं की स्वर-संगति (आलोचना, जुलाई-सितम्बर 2008, पृ. 67)

2 इतने पास अपने , फ़ान गौग् का एक चित्र, पृ. 62

3 कुछ कविताएँ, निराला के प्रति पृ. 7

4 बात बोलेगी, गजानन मुक्तिबोध, पृ. 98

गहरे आसमानी रंग की चादर में लिपटे मुक्तिबोध से किसे प्यार न होगा? दरअसल यह मानवीय करूणा का रंग है, जो शमशेर की कई कविताओं में बिखरा पड़ा है। सचमुच शमशेर की चित्रशाला रंग-बिरंगी है और हमें रोशनाई में घुल जाने के लिए कहती हैं।

शमशेर की कविताओं के कुछ ऐसे रंग भी हैं, जिनमें व्यंग्य का पैनापन है। 'निज़ामशाही: 1948' शीर्षक कविता में व्यक्त यह रंग देखिए-

"ये चालबाज़ हुकूमत, दुरंगियों का गढ़,
बनी हुई है अभी तक फिरंगियों का गढ़!"[1]

क्या दुरंगियों का गढ़ बनी हमारी चालबाज़ हुकूमत, फिरंगियों का गढ़ नहीं बनी हुई है? या ऐसे प्रभावों से मुक्त हो पाई है। शमशेर की कविता का यह शब्द-रंग भी देखिए-

"हाय लीडर दुरंगी न कम गुम हुए!!
बीच धारा अगम थी-गुड़म् गुम हुए!!"
"बोली बरसात में इंकलाबी दुल्हन:
ले के छाता हमारा बलम गुम हुए!"
"क्या गुरूजी मनुऽजी को ले आयेंगे?-
हो गये जिनको लाखों जनम गुम हुए!"
"अपनी किस्मत को यों रो रहे हैं चियांग-
रह गये हम लंडूरे, सनम गुम हुए!"[2]

रंग का ऐसा व्यंग्य बाण जिसमें क़वि स्वयं को भी शामिल किये है, क्या अन्यत्र मिलेगा! शब्द-रंग का यह रूप भले ही शमशेर की कविताओं में कम हो, पर उसे नज़र अंदाज़ नहीं किया जा सकता। 'हरा चैक' के अतिरिक्त साम्प्रदायिकता पर लिखी शमशेर की कविता का यह रंग गौरतलब है-

"अभी हमारे मुँह में झाग है आँखों में क्रोध और दंभ और
एकांगी विद्वता की कठोर लालिमा ।"[3]

इस लालिमा का भेद खोलने वाली दृष्टि को जानने के लिए ज़रूरी है शिवकुमार मिश्र का यह कथन- "शमशेर जैसा बारिक और कोमल से कोमल सौन्दर्य-संवेदनाओं और रूप-चित्रों

---

1 बात बोलेगी, निजामशाही: 1948, पृ. 63

2 बात बोलेगी, राजनीतिक करवटें : 1948 {बतर्ज़ कव्वाली}, पृ. 71

3 चुका भी हूँ नहीं मैं, भाषा, पृ. 67

का प्रभाववादी, आत्मपरक, मनोवैज्ञानिक वास्तव का चितेरा कवि और कलाकार सामाजिक व्यंग्य की ज़मीन पर भी इतनी क्षमता के साथ पैर रोपकर खड़ा हो सकता है, और इस प्रकार के तेवरों में बात कर सकता है, यह तथ्य अपने में अतिशय आह्लादकारी और शमशेर के रचनात्मक सामर्थ्य का असंदिग्ध प्रमाण है।"[1]- व्यंग्य की ज़मीन खोली है मिश्र जी ने। किन्तु इसका दूसरा पहलू यह है कि शमशेर की कविता के शब्द-रंग में व्यंग्य का रूप छिपा हुआ है। क्या रंग के इन व्यंग्य-रूपों को अलग किया जा सकता है ?

शमशेर के रसमय शब्द-चित्रों में कई रंग घुले-मिले हैं। उनके ब्रश में रंगों और रेखाओं का ऐसा उत्सव है जहाँ शब्दों में ही सबकुछ कह जाने की व्याकुलता तथा उल्लास भरा हुआ है। प्रकृति-संवेदना के जितने रंग-दृश्य हो सकते हैं, शमशेर ने सबको शब्द में जोड़ा है। नभ के ही कितने रूप हैं- बहुत नीला शंख जैसे भोर का नभ, बहुत कोमल मोम-सा पीला और आसमान सावन में मैली धुली खादी-सा है, आकाशवन सुलगता भी है उसमें लाल, गौहर, जमुर्रद के निशान उड़ते हुए मिलते हैं, आकाश(कविता) के सरगम खनिज रंग हैं। धूप कभी मूंगा है, तो कभी गोरी गुलाबी है, धूप ठंडी धुली सुनहरी है, धूप कोठरी के आइने में खड़ी है, धूप बाहर ही नहीं, धूप मेरे अंदर भी है। मीठी चुस्की सा दिन है तथा दिन किशमिशी गोरा है। चेहरे की शाम में एक पीली शाम है। कवि को रात भी कभी सीसे की-सी नीली लगती हैं, तो कभी मौन संध्या का दिए टीका आती है और कभी आज काजल रात भर बरसा करेगा क्या? पत्ते भी संध्याभा में ठहर जाते हैं। फिर सुबह आती है। रंग-बिरंगी ऊषा जैसे-जैसे खिलती-खुलती है वैसे-वैसे कवि के रंग भी गतिमान होते हैं। नील जल में या किसी की गौर झिलमिल देह हिल रही हो/स्लेट पर या लाल खड़िया चाक मल दी हो किसी ने/ बहुत काली सिल जरा से लाल केसर से कि जैसे धुल गई हो/अक्टूबर के बादल हल्के रंगीन ऊदे हैं/ बादल बैंगनी-संदली, भूरे-सुर्मयी-सिंदूरी, धुले-साँवले, पीले-गुलाबी, ऊदे-कारे, नीले गहरे से मटमैले हैं/बादलों के मौन 'गेरू-पंख भी हैं। कवि देखता है कि चिड़िया लाल-भूरी हैं, कगार हरा नीला-सा है, काग तमसा से काले हैं, फाख़्ता के बाज़ू के अंदर का रोआँ उजला है, गायें-मैली-सफेद-काली भूरी हैं, ताड़ काला है, खूनी सड़क है, सुनसान पथ में काली युवती की हँसी है, पर्व प्रकाश है, तथा लाल-लाल जलती हुई मशालें बढ़ रही हैं।

---

[1] साहित्य और सामजिक सन्दर्भ, पृ. 141

नीला दरिया बरस रहा है, पीले गुलाबों का दरिया किसी के स्वप्न जैसे पाँव चूम रहा है, सावन में गुलाबी रंगीनियाँ हैं और स्वाति धार बरस रही है। तन का संगीत भी कम रंगों से सराबोर नहीं है- सूखी-भूरी झाँड़ियों से व्यस्त पिंडलियाँ हैं/नीलजल में या किसी की गौर झिलमिल देह हिल रही है/आकाशीय गंगा की झिलमिली ओढ़े तन का छंद गत स्पर्श है। गोरा-चिट्टा बच्ची का मुख कवि को उतना ही प्यारा है जितने गंदले जल में मेहँदी वाले हाथ। राग का रंग बताते हैं पीयू-पीयू करते मोरे, जिनकी हीरे नीलम की गर्दनें बिजलियों की तरह हरियाली के आगे चमकती हैं। गुलाब भी एक प्रकार का नहीं होता-पीले गुलाबों के अतिरिक्त गंदुमी गुलाब की पंखुडियाँ खुली हुई हैं और कत्थई गुलाब नर्म-नर्म दबाए हुए केसरिया साँवलापन लिए हुए है मानो अंगूरी रेशम हो। चाँद भी कभी संवलाती ललाई लिए हुए आता है तो कभी गोरा-चिट्टा, गोल-मटोल। कवि का मानना है कि पश्चिम में काले और सफेद फूल हैं और पूरब में पीले और लाल उत्तर में नीले कई रंग, हमारे यहाँ चम्पई सांवले। घने अँधेरे की आँख बनकर शमशेर के यहाँ कई आते हैं और दूसरे की कलाओं के रंग भी कवि को प्रिय हैं। आश्चर्य है इतनी विविधता देखकर! इस विविधता में शामिल हैं वे रंग जो चुहुलबाजी करते-से जान पड़ते हैं। दुरंगियों की चालबाज़ हुकूमत हो या दुरंगी लीडर हों या फिर एकांगी विद्वता की कठोर लालिमा ओढ़े मज़हब वाले हों, शमशेर की कविता सबके रंगों को उजागर करती है।

अतः शमशेर के रसमय शब्द-रंगों की विपुलता देखकर कहना चाहिए कि रंगों का ऐसा प्रयोग संभवतः हिन्दी कविता में अन्यत्र नहीं दिखाई देता। जो कवि हवा में 'सन्-सन् ज्योति के हर तीखे बाण' देख-सुन रहा हो, उसके चमचमाते तीखे बान के रूप-रंगों का वर्गीकरण नहीं हो सकता। क्योंकि उसमें वे धारदार बान भी सम्मिलित हैं जो दूसरों की चुटकी लेते हैं। इसलिए मात्र प्रयास के द्वारा हम उन रंगों का आस्वाद भर ले सकते हैं। शमशेर की कविता में रंगों की विविधता भर नहीं है अपितु रंगों की संभावना भी है और रंग बनाने की विधि या कला भी है। उनकी कविताओं में हल्के, धूसर, चटख आदि रंगों का ऐसा सम्मिश्रण है, कहीं-कहीं अलग भी है, कि स्पर्श का, गंध का, स्वाद का अनुभव भी कराते हैं। अतः शमशेर के रसमय चित्रों में कई रंग घुले-मिले हैं। जिनके पीछे से कवि के जीवन के विविध रंग झाँक रहे हैं। पाठक में यदि धैर्य हो तो वह भी अपना रंग-रूप पाकर झूम उठेगा। शमशेर के रंग संभावना से भरे हुए हैं।

5.3. लय

"मैंने उससे पूछा –
उसने मुझसेः
कब?
मैंने कहा –
उसने मुझसे कहाः
समय अपना राग है ।"[1]

शमशेर के राग के यह प्रवाहित बोल कैसी लय निर्मित करते हैं, यह उनकी कविताओं के विश्लेषण से स्पष्ट होगा। अतः उनकी कविताओं की लय को देखा जाना चाहिए। किन्तु रामस्वरूप चतुर्वेदी जी का यह कथन – "सभी कलाओं का साध्य संगीत की स्थिति को उपलब्ध कर लेना है, यानी रचना में वस्तु और रूप एक-दूसरे मे विलीन हो जायें जो एबस्ट्रेक्ट में, अमूर्तन में कुछ अधिक ही संभव होता है। शमशेर की कविताओं में संगीत की यह मनःस्थिति बराबर चलती रहती है, जिसका संगमन बीच-बीच में चित्रकला से होता है। कविता, संगीत और चित्रांकन की एक अद्भुत त्रिवेणी शमशेर के यहाँ प्रवाहित है। एक ओर चित्रकला की आकृति उभरती है, और फिर संगीत की अमूर्तता में डूब जाती है। यों चित्रकला, संगीत और कविता घुल-मिलकर रचना संभव करते हैं। भाषा में बोलचाल के गद्य का लहज़ा, और लय में संगीत का चरम अमूर्तन, इन दो परस्पर प्रतिरोधी मनःस्थितियों को उनकी कला साधती है, जिसे यहाँ कहा गया है 'गद्य की लय '।"[2] शमशेर की कविता में कला की 'अद्भुत त्रिवेणी प्रवाहित है', इस बात से शायद ही किसी को इंकार हो, परन्तु शमशेर का तो कहना है – "अपनी कविताओं में मेरी ख़ास कोशिश रही है कि हर चीज़ की, हर भावना की जो हर भाषा में होती है, जिसमें वह कलाकार से बातें करती है, उसको सीखूं।"[3] नामवर सिंह और अशोक वाजपेयी के साथ बातचीत में शमशेर ने यह भी कहा है

---

1 कुछ कविताएँ, राग, पृ.9.

2 शमशेर : गद्य की लय (आधुनिक कविता यात्रा, पृ.123)

3 संवाद, पृ.44.

कि – "भावनाओं की भी एक लय होती है। इसमें एक मोटी सी मिसाल यह भी देता हूँ कि आप जितने पेड़ो को देखे और तमाम केले वगैरह...हर एक की रिद्म अलग-अलग है। जब हम उनका चित्रण करते हैं तो जो उनकी अपनी ख़ास रिद्म है, वो आनी चाहिए। जो बहुत बड़े कवि हैं, उनके यहाँ वह अनायास आती है और हम महसूस करते हैं कि वो वस्तु स्वयं बोल रही है। इसी तरह शब्दों पर, उसकी लय पर और संगीत पर इसीलिए ध्यान जाता है कि वही तो मेरे काम की है। अगर इसके कथ्य पर ध्यान जाये तो इसका मतलब है कि मेरा अपना कोई कथ्य नहीं है। कथ्य मेरे पास है और वो मुझे मजबूर कर रहा है कि मैं उसको व्यक्त करूँ। अब उसके लिए माध्यम चाहिए। माध्यम मुझे बड़े कवियों से ही मिले हैं।"[1] इस दृष्टि से शमशेर का यह कवितांश –

"कबूतरों ने एक ग़ज़ल गुनगुनाई...
मैं समझ न सका, रदीफ़-काफ़िए क्या थे,
इतना ख़फ़ीफ, इतना हल्का, इतना मीठा
उनका दर्द था ।"[2]

क्या 'कबूतरों की गुनगुनाती ग़ज़ल...' को किसी ज़ुबान में बाँधा जा सकता है? इसीलिए बेहतर है कि कवि की भिन्न-भिन्न लय वाली कविताओं को समझा जाए।

शमशेर के प्रकृति-चित्रों को हम पहले ही देख आये हैं। अब बारी है कि उन चित्रों की गतियों का 'संध्या' शीर्षक कविता में बादलों के विभिन्न रंगों के अतिरिक्त शब्दों को तोड़कर गति को विलंबित कर देने की जो पहल है, वह इस बंद में इस प्रकार है –

"या दों की द्वा भा एँ
बा दल के भा लों पर
चमकी-सी लय होने
धीरे-धीरे-धीरे
इ त ने पास अपने ।"[3]

---

1 शमशेर बहादुर सिंह से नामवर सिंह और अशोक वाजपेयी की बातचीत (पूर्वग्रह, अंक:75, जुलाई-अगस्त 1986).

2 कुछ और कविताएँ, टूटी हुई, बिखरी हुई, पृ.51.

3 इतने पास अपने, संध्या, पृ. 14

यहाँ अक्षरों के बीच जो अन्तराल रखा गया है, वह शब्दों को विलंबित करने के लिए है। क्षितिज के नीचे जाते सूरज का मंद प्रकाश अचानक बादलों के ऊपर चमक जाता है और 'चमकी-सी लय' यादों के साथ धीरे-धीरे इतने पास आ जाती है 'बादलों के मौन गेरु-पंख' शीर्षक कविता की लय को बता रहे है नन्दकिशोर नवल जी – "'बादलों के मौन गेरु-पंख' एक विषम मांत्रिक छन्द की कविता है। इसका प्रथम चरण अट्ठाइस मात्राओं का है और उसकी लय में प्रचुर दीर्घता है। उदाहरणार्थ, 'बादलों के मौन गेरु-पंख, सन्यासी खुले है।' ऐसा क्यों है? इसलिए कि कवि को यहाँ इन बादलों का वर्णन करना है, जो आकाश को छा रहे हैं। इसी कविता में आगे पत्थर की तरह मन के नीचे बैठते चले जाने का वर्णन है। स्वभावतः उसमें चरण छोटे हो गए हैं और लय की दीर्घता कम हो गई है :

"तू कि पत्थर हो गया है
ओ विहग मन
बैठता जाता रहा है
किस दिशा में?"

जहाँ शमशेर गद्य में कविता लिखते हैं, वहाँ भी गद्य के अपने रूप को सुरक्षित रखते हुए उसमें एक लय भर देते हैं। यह काम वह यति और गति के द्वारा करते हैं। उनकी वाक्य-रचना गद्य की तरह दुरुस्त रहती है, पर उसमें वे निश्चित जगह पर यति और गति ला देते हैं।"[1] शमशेर की इस विशेषता को मानना उचित है।

लय की दृष्टि से 'लौट आ ओ धार' शीर्षक कविता महत्त्वपूर्ण है। कवि की तीव्र व्याकुलता इस कविता में व्यक्त हुई है। लय का संयोजन शुरु होता है इन पंक्तियों से –

"लौट आ ओ धार
टूट मत ओ साँझ के पत्थर
हृदय पर
(मैं समय की एक लंबी आह
मौन लम्बी आह)"[2]

---

1 शब्द जहाँ सक्रिय हैं, पृ.16.

2 कुछ और कविताएँ, लौट आ ओ धार, पृ. 40.

आरंभ में अलग-अलग दीर्घ स्वरों के प्रयोग से तथा 'आह' में व्यंजित ध्वनि से विगत के प्रति कवि के उस लगाव को भी उभारता है जो 'लौट आ ओ धार' का केन्द्रीय-भाव है। 'आह' पर बलाघात की आवृत्ति खंड़ित जीवन से उपजे अकेलेपन को दर्शाता है। कह सकते हैं यह उस सौंदर्य की खोज है जो खो चुका है। अर्थगत लय का कुशल प्रयोग इस कविता में अद्यान्त व्याप्त है। इसी प्रकार 'सागर तट' की ये पंक्तियाँ –

"धुन रही थीं सर
व्यर्थ व्याकुल मत्त लहरें
वहीं आ-आकर
जहाँ था मैं खड़ा
मौन;"[1]

'व्यर्थ व्याकुल मत्त लहरें' में व्याकुल का प्रयोग लय को तीव्र बनाने के लिए हुआ है। इस कविता में मनुष्य का आकांक्षित हर्षोल्लास और मकीनीकी समय की टकराहट चलती रही है। लय की गति इन पंक्तियों में स्पष्ट है –

"यह समंदर की पछाड़
तोड़ती है हाड़ तट का
अति कठोर पहाड़ ।"[2]

'य'शाम है' शीर्षक कविता पंचचामर छंद में लिखी गई है। जिसकी विस्तृत विवेचना राधावल्लभ त्रिपाठी जी कर रहे हैं। पहले कुछेक पंक्तियाँ –

"'य'शाम है
कि आसमान खेत है पके हुए आनाज का ।
लपक उठीं लहु भरी दराँतियाँ,
- कि आग है:
धुआँ-धुआँ
सुलग रहा
गवालियर के मजूर का हृदय ।

---

1 कुछ और कविताएँ, सागर-तट, पृ. 29.

2 कुछ और कविताएँ, सागर-तट, पृ. 29.

कराहती धरा

कि हाय-मय विषाक्त वायु..."[1]

त्रिपाठी जी लिखते हैं – "शमशेर 'ये शाम' या 'यह शाम' न कहकर 'य शाम' कहते हैं, ग्वालियर की जगह गवालियर शब्द बताते हैं (जबकि कविता के साथ गद्य में दी गई टिप्पणी में ग्वालियर शब्द ही रखा है)। संभव है कि इस कविता को लिखते समय उन्हें इस बात का अहसास न हो कि रचना पंचचामर छंद में बन रही है। पंचचामर छंद के प्रत्येक चरण में जगण, रगण, जगण, रगण और जगण के बाद एक गुरु आता है – यह समझे बिना अंजाने में या छंदशास्त्र की अपने कवि मानस में स्वतः स्फूर्त समझ के कारण वह इस तरह लिखते रहे हों – यह भी हो सकता है। यह भी सत्य है कि हिन्दी की आज की कविता जिस तरह पढ़ी या समझी जाती है, उसके मुताबिक 'य शाम है' शीर्षक कविता छंदोबद्ध कविता नहीं मानी जाएगी, वह मुक्त छंद की कविता कही जाएगी। पर हकीकत यह है कि इस पूरी कविता में पंचचामर छंद की संरचना है। इसे लिखते वक्त तो शमशेर समझ ही रहे थे कि युद्ध, संघर्ष, जुलूस, संहार और तोड़फोड़ के वर्णन के लिए इस तरह का छंद मुआफ़िक होता है। यह भी संभव है कि वे इस छंद की पूरी बुनावट को समझ कर जान बूझकर उसकी पारंपारिक लय को तोड़ रहे हों। 'गवालियर के मजूर के हृदय' में शिव का तांडव नहीं हो सकता है, जिसमें दिग्गिंत प्रमोदमानमानस होकर थिरकें। इसमें मज़दूरों के जुलूस का दृश्य है, जहाँ –

"*गरीब के हृदय*

टँगे हुए

कि रोटियाँ लिए हुए निराश

लाल-लाल"

प्रसाद ने पंचचामर छंद के विधिविधान का पालन किया है, क्योंकि उनके यहाँ स्वयंप्रभा समुज्जवला स्वतंत्रता अमर्त्य वीर पुत्र को पुकार रही है। यह पुकार रीतिबद्ध, नीतिबद्ध है। मुक्तिबोध में यह पुकार पुकारती हुई खोती जा रही है, तो वे पंचचामर कहीं लेते हैं, कहीं छोड़ देते हैं। बच्चन पंचचामर को गीत की लय में ढालते हैं। शमशेर ने पंचचामर को लेकर तोड़कर बिखेर दिया है। पंचचामर छंद में या तो चार वर्णों पर यति होती है या आठ पर। शमशेर कहीं चार पर सहसा यति करते हैं, कहीं आठ या सोलह वर्णों तक उसे खींचते हैं,

---

1 कुछ कविताएँ, य' शाम है, पृ.32.

'य' शाम है/कि आसमान खेत है पके हुए अनाज का' इन दो पंक्तियों में ही चार की गति पर प्रवाह को अचानक छेंक फिर एकदम सोलह वर्णों के बाद यति लाई गई है।

'लपक उठी लहु भरी दरातियाँ/...कि आग है...' आगे की इन दो पंक्तियों में चार-चार वर्णों पर ही यति लाकर गति का साहचर्य रचा गया है। (ऊर्दू के ग़ज़ल की बंद की तरह लपक को यहाँ लपक् पढ़ा जाएगा, ललक नहीं, तब यह दो वर्णों का ही शब्द रहेगा, जिसमें द्वितीय वर्ण गुरु होगा।)"[1] इतने लम्बे विवेचन के बाद कुछ भी कहना शेष नहीं रह जाता।

जिन दो कविताओं की लय महत्त्वपूर्ण हो सकती है वे हैं - 'धारीदार जाँघिया पीला' तथा 'शोभा'। इन कविताओं में वातावरण की सृष्टि लय के अनुसार है। जिसमें शमशेर की मनःस्थिति का भी चित्रण हुआ है –

"*अब भी इत्मीनान से*
उसी एक चाल से और उसी अंदाज से
वो मेरे सामने से धीर-धीरे
निकला चला जा रहा है ।"[2]

इस गद्य कविता में लय की तलाश कर रहे हैं नंदकिशोर नवल जी – "यह पूरी तरह से एक गद्य में लिखी गई कविता है, पर उसे हम गद्य नहीं कह सकते, क्योंकि उसमें एक ऐसी लय है, जो हमें गद्य में नहीं मिलती। यह लय यति अथवा विराम और गति के कारण ही संभव हुई है। यति और गति लाने में निश्चय ही दो शब्दों के बीच डाला जानेवाला अन्तराल ही नहीं बल्कि चरणों का संयोजन भी सहायक होता है। कभी-कभी शमशेर गद्य की वाक्य-रचना को छोड़कर केवल शब्दों के सहारे कविता लिखते हैं। वहाँ यति और गति का नियम कुछ दूसरा होता है। ऐसी कविताओं में प्रत्येक शब्द के बाद यति आती है। यदि कई शब्द हुए, तो वे मिलकर एक इकाई बन जाते हैं। यह बात 'इतने पास अपने' कविता संग्रह की अन्तिम कविता 'शोभा' में देखी जा सकती है –

---

1 छंदों में रंगों की बारिशःशमशेर की कविता (वसुधा, अंकः86,जुलाई-सितंबर2010.)

2 इतने पास अपने, धारीधार जांघिया पीला, पृ.53.

"मासूमियत हरी दूब कलियाँ हलकी
मूँगा धूप विश्वास सहज
उल्लास बहुत-ज्ञान-नहीं उसकी
सुनहली पहली-पहली-सी किरनें"[1]

इस उदाहण मे 'हरी दूब' 'विश्वास सहज' और 'बहुत-ज्ञान-नहीं' ये मिलकर एक-एक शब्द बन गए हैं। 'मासूमियत' तो एक शब्द है ही, हम कविता के लय संयोजन में बँधकर 'हरी दूब' में दो शब्दों के बीच जो अन्तराल है, उसे भुला देते हैं और उन्हें एक शब्द की तरह पढ़ते हैं, जिससे कविता में लय की सृष्टि होती है। गद्य-कविताओं में भी शमशेर ने विषय-वस्तु और मनोदशा के अनुसार ही लय का निर्धारण किया है। दूसरी कविता में कवि की मनोदशा ही उसकी विषय-वस्तु है, इसलिए कविता की लय उसी के अनुसार चलती है।"[2] कहा जा सकता है कि लय का जैसा प्रयोग शमशेर ने किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

उपर्युक्त विवेचन तथा पिछले अध्यायों के विवेचन के बावजूद गिरिधर राठी जी को लगता है कि " इस अर्थ में उनका 'विकास' नहीं हुआ है – भावावेग, शिल्पगत प्रयोग तथा भाषा की पकड़ जो शुरु में थी, लगभग अब भी वही है। उनकी ख़ास अनुभव दृष्टि में भी कोई बड़ा अन्तर मिलेगा, ऐसा नहीं लगता।"[3] राठी जी द्वारा शमशेर की ख़ास अनुभव दृष्टि पहचान लेने के बाद रघुवीर सहाय का यह कथन उल्लेखनीय है – "एक ओर तो ये कविताएँ ('बात बोलेगी' कविता संग्रह की) कवि के सतत जागृत और संवेदनशील रहने के परिणाम हैं और दूसरी ओर ये उनके कवि कर्म के विकास के प्रमाण हैं। किसी अन्य समकालीन कवि ने अपने समय के साथ और इतिहास के साथ इस तरह का जीता-जागता रिश्ता नहीं जोड़ा है, और इसीलिए शमशेर को छायावादी दिमाग में जानेवाले आलोचक अभी तक समझ नहीं पाए हैं। विचित्र बात यह है कि ऐसे ही दिमागी को बहुधा नागार्जुन के काव्य में तत्कालिकता जल्द समझ में आ जाती है, जबकि शमशेर की विशाल समसामायिकता का फलक पाकर वे

---

1 इतने पास अपने, शोभा, पृ. 74

2 स्वतंत्रता और सौंदर्य की कविता, (शब्द जहाँ सक्रिय हैं, पृ.17)

3 ठहरा हुआ मगर पहुँचा हुआ कविःशमशेर (उहापोह,पृ.40)

कुंठित हो जाते हैं।"[1] इससे अधिक क्या कहा जा सकता है। इसलिए शमशेर की कविता की लय की ओर फिर से लौटें। 'काल तुझसे होड है मेरी' शीर्षक कविता जिस लय के साथ चलती है, उसे देखें –

"काल,
तुझसे होड़ है मेरी: अपराजित तू –
तुझमें अपराजित मैं वास करूँ ।
इसीलिए तेरे हृदय में समा रहा हूँ
सीधा तीर-सा, जो रुका हुआ लगता हो –
कि जैसा ध्रुव नक्षत्र भी न लगे,
एक एकनिष्ठ, स्थिर, कलोपरि
भाव, भावोपरि
सुख, आनन्दोपरि
सत्य, सत्यसव्योपरि
मैं-तेरे भी, ओ 'काल' ऊपर!
सौंदर्य यही तो है, जो तू नहीं है, ओ काल!"[2]

'सीधा तीर-सा' में जो वेग है, वह आगे बढ़ता हुआ लय को और तीव्र करता जाता है। 'मैं-तेरे भी, ओ 'काल' ऊपर!' में लय अपने चरम रुप में आ जाती है। स्पष्ट है कि शमशेर की कविता की लय हमेशा एक तरह की नहीं होती। जैसा कि हम पहले ही कह आए हैं कि शमशेर ने कहा था कि उनकी कविता में 'उसका छंद क्या होगा यह निश्चित करके मैं नहीं लिखता। वो अपनी रौ में आएगा। रौ में जैसे आँधी आती है। हर आँधी एक ही रौ में एक ही तेजी से नहीं आती – कोई कम, कोई ज़्यादा, कोई जोर-शोर के साथ।' इसीलिए उनकी काव्यलय की गतियाँ एक-सी नहीं होती। 'घिर गया है समय का रथ' शीर्षक कविता में लय जिस गति से शुरु होती है –

"मौन संध्या का दिए टीका

---

1 मुझको मिलते हैं अदीब (यथार्थ यथास्थिति नहीं,पृ.134)

2 प्रतिनिधि कविताएँ, काल तुझसे होड़ है मेरी, पृ.172.

रात
काली
आ गई:
सामने ऊपर, उठाए हाथ-सा
पथ बढ़ गया ।"[1]

'पथ बढ़ते' ही लय की गति भी बदल जाती है जो आखिर में –

"घिर गया है समय का रथ कहीं ।
लालिमा से मढ़ गया है राग ।
भावना की तुंग लहरें
पंथ अपना, अंत अपना जान
रोलती है मुक्ति के उद्‌गार ।"[2]

इस बदली लय से स्पष्ट है कि शमशेर की भिन्न-भिन्न स्वभाव की कविताओं में लय की गति भी भिन्न-भिन्न है । 'उषा' कविता की लय बहुत धीमी है तो 'जीवन की कमान' के उत्तरांश में लय की गति यों हो जाती है –

"जब जन-बल का सागर
दहाड़ कर उट्ठेगा,
करता विचुर्ण फासिस्ट हाड़।"[3]

शमशेर की कविता में संगीत का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है । प्रभाकर श्रोत्रिय जी लिखते हैं – "शमशेर के भीतर सभी कलाओं के मौलिक संवेदन हैं, इस माने में उनका काव्य-जगत् कलाओं की 'सिंफनी' है । नतीजे में उनमें केवल रुप-वैविध्य ही नहीं, रुप विन्यासों की विविधता भी है । (उनके भीतर जो सूक्ष्म लय-कंपन है, वह कविता में संगीत का संक्रमण है।) यह संगीत केवल शब्द में ही नहीं, वस्तुओं और भावों में निहित मूल गीतात्मकता में भी है । संगीत और कविता और चित्र, शमशेर के भीतर एक-दूसरे में समाये हुए हैं –

"वह जो तुम्हारे हृदय में बज रहा है
मैं उस साज में एक चाँद

---

1 कुछ और कविताएँ, घिर गया है समय का रथ, पृ.38.

2 कुछ और कविताएँ, घिर गया है समय का रथ, पृ.39.

3 बात बोलेगी, जीवन की कमान, पृ.13.

देखता हूँ
उसको पकड़ना चाहता हूँ
मेरी इस चाह के अलावा मैं कुछ नहीं
कुछ नहीं ।''

जहाँ उषा के जल में स्तंभ हिलता है, जहाँ चाँदी के स्थिर जल में असित मूर्तियाँ हिलती हैं, वहाँ शमशेर का शिल्पकार सक्रिय है। क्योंकि शमशेर की 'आत्मा का भूगोल' एक झीने, पारदर्शी मानस का भूगोल है, इसलिए स्थूल को बहुत-कुछ सूक्ष्मच्छाय होकर ही वहाँ आने की अनुमति मिली हुई है।''[1] इसी प्रकार 'रेड़ियो पर एक योरोपीय संगीत सुनकर' शमशेर की अनुभूति का जो संगीत बनता है, उसे खोल रहे हैं विष्णुचंद शर्मा जी – ''शमशेर की कविता को हल्के ढंग से जब भावुक प्रभाव की कविता कहा जाता है, या उनके सामाजिक और निजी अनुभव को, या उनके प्रयोग और कथ्य को जानकर अलगाया जाता है, तो वहाँ शमशेर की 'संगीत से मिलती-जुलती शैली' के बिखर जाने का खतरा पहले आड़े आता है। शमशेर शब्दों में – संगीत और सपने, मूर्तिकला और वातावरण और चित्रकला और प्रतीक – यानी मानवीय कला के प्रभाव को बाँधने का एक 'सूक्ष्म प्रयास' करते हैं। यही है शमशेर का जादुई यथार्थ। इस प्रयास के लिए इतिहास या व्यक्ति के प्रति दायित्वशील होना जरुरी है। शमशेर स्वराघात और उच्चारण पर जोर देते हैं। बाद में शमशेर की एक कविता के पाठ भेद और त्रिलोचन के सॉनेट के स्वराघात पर डॉ. रामविलास शर्मा का ध्यान भी गया। इन शर्तों पर काव्य या स्वर खरा नहीं उतरने पर आप शमशेर से कविता सुन भी नहीं सकेंगे और न ही पढ़कर समझ ही सकेंगे। काव्य-पाठ की यह 'संगीत से मिलती-जुलती शैली' ही उनका छंद है। छंद में झंकार है यह समझने के शमशेर पाठक को तैयार करते हैं। 'रेड़ियो पर एक योरोपीय संगीत सुनकर' कविता में 15 पंक्तियों पर संबोधन का चिन्ह, 19 वीं पंक्ति पर विराम चिन्ह है। 'मैं' एक पूरा पैरा है, इस वाक्य का विन्यास धीमी-धीमी गति से, 19 वीं पंक्ति 'कमलदल' पर पूरा होता है। तीर सी, पहला पड़ाव है 37 मात्रा का, शमशेर सी दूसरा पड़ाव है 36 मात्रा पर, तीसरा पड़ाव 39 मात्राओं पर आता है। यहीं संबोधन का चिन्ह है। चौथे पड़ाव पर सी का तुकान्त है। स्वर अधिक खिंचकर, धीमी गति

---

1 शमशेर:भावसाध्य पावनता, (संवाद,पृ.45)

से 36 मात्रा पर ठहराव के पूर्णविराम पर शान्त होता है। यहीं वाक्य और स्वरों को संगीतमय यात्रा है, जिसे मैंने झंकार कहा है। दूसरा वाक्य सात पंक्तियों का है। हर पंक्ति अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती है। यानी सातों पैरों का एक वाक्य, कई मोड़ पर ठहराव के अनुबंध के साथ, धीमी गति से चलता है। चार पंक्तियों पर तुकान्त दीर्घ स्वर का है। अंत की तीन पंक्तियाँ तुकों से स्वतंत्र हैं। केवल पहले वाक्य के तीनों पड़ाव की सी का स्वर साम्य है दीर्घ स्वर की पाँचवी पंक्ति ओ किसकी में। तीसरा बंध है शुरु है आखिरी पीर...। यही संक्षिप्त पूरा वाक्य है। संदर्भ इसका भी छिपा है। चौथा स्वतंत्र बंध, पाँच पंक्तियों का एक वाक्य है। सलाम। और हम कलाम का दृढ़ स्वर का तुक मकार दो पंक्तियों में चलता है। अन्त की तीन पंक्तियों में आवेश हो, सो, रो दीर्घ स्वर है। 11 पंक्तियों के बावजूद वाक्य आवेश से अधूरा रह जाता है। चार बंध तक हीरो और हिरोइन की स्वप्न कथा है। घुटते आकाश के अनुसार स्वरों का उतार-चढ़ाव है। मर्म से जलते उच्छवास से शब्द हैं चित्रमय। आखिरी दो बंद में दर्दनाक फरियाद के क्षण का अनुभव है। अन्त में कविता दृश्यों के प्रारंभ से अन्त के बिन्दु तक पहुँचती है। प्रेमी, प्रेमिका के आँसू भरे मौन को मूर्त करता है। प्रेमी हिरो अकेला मंच पर रह जाता है। कवि अपनी व्यथा के साथ बेख़बर-सा। जैसे सपना आधी रात का टूट गया हो। वह मंच पर अपनी पत्नी यानी उस जात का जो भावुक प्रभाव में भी कभी-कभी एकान्त में आ जाते हैं – विदा करता है : आमीन।"[1] संगीत की लय का इतना विस्तृत और सुंदर विवेचन कोई सहृदय कवि-आलोचक ही कर सकता है। सचमुच सभी कलाएँ एक-दूसरे में समाई हुई हैं।

शमशेर ने उर्दू बहर का प्रयोग अपनी ग़ज़लों में किया है। जिसकी पहली शर्त रदीफ़-काफ़िये का ठीक-ठीक पालन है। 'गजानन मुक्तिबोध' ग़ज़ल के रुपाकार में लिखा गया शोकगीत है। रंजना जी मानती हैं कि, 'बहर की दृष्टि से यह मुकम्मिल ग़ज़ल' है। सो रंजना जी का उद्धरण देना उचित होगा – "सामान्यतया मतले के शेर के दोनों मिसरों में रदीफ़-काफ़िये का निर्वाहन होता है। उनकी (शमशेर की) एक ग़ज़ल 'फिर निगाहों ने तेरी दिल में कहीं चुटकी ली' का आरंभ सीधे शेर से होता है। इसमें मतला नहीं है –

"*फिर निगाहों ने तेरी दिल में कहीं चुटकी ली*

---

1 काल से होड़ लेता शमशेर,पृ.98.

फिर मेरे दर्द ने पैमाना वफ़ा का बाँधा ।''

यहाँ 'वफ़ा का बाँधा' रदीफ़-काफ़िया है, जो केवल दूसरे में है। वैसे ग़ज़ल में प्रत्येक शेर का भावविश्व अलग रहता है। ये शेर केवल रदीफ़-काफ़िये के कारण एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं। पर एक अनायास संयोग है कि उनकी यह ग़ज़ल 'मैं गया आप क्यों हुए मग़मून' के मतले के शेर और अन्तिम शेर तक भावविश्व की बहुत कुछ समानता के कारण सारे शेर एक-दूसरे से जुड़े हुए लगते हैं और उसमें एक नज़्म का-सा बोध होता है। हाँलाकि यह अनायास ही हुआ प्रतीत होता है। वही बात 'कहो तो क्या न कहो, पर कहो तो क्योंकर कहो' ग़ज़ल मे है। कवि मानो प्रत्येक शेर में अपनी प्रेमिका के साथ वार्तालाप कर रहा है। अर्थात भावविश्व का सातत्य इसमें है।'' -और उनका निष्कर्ष है कि – ''उनकी ग़ज़लें बहरों की दृष्टि से काफ़ी मुकम्मिल हैं। कहीं-कहीं पर दोष भी हैं। पर जहाँ तक ग़ज़ल की 'आत्मा' की बात है उनकी ग़ज़लें काबिले-तारिफ़ हैं।''[1] इस दृष्टि से रामस्वरुप चतुर्वेदी जी का यह कथन उचित है – ''कविता के लिए गद्य का आधार रखते समय शमशेर की खड़ी बोली में उर्दू का मुहाविरा जगह-जगह बोलता है, पर जहाँ लय उर्दू बहर जैसी मुखर न होकर सामान्य खड़ी बोली में से शान्त मुद्रा में उपजती है, सो नई कविता की एक विशिष्ट उपलब्धि कही जा सकती है।''[2] ग़ज़लों की दृष्टि से शमशेर ने उर्दू खड़ी बोली की लय का भी प्रयोग भी किया है और मान सकते हैं कि यह गद्य की लय है। किन्तु शमशेर के यहाँ 'पद्य की लय' भी मिलती है। उदाहरण के लिए 'कत्थई गुलाब' शीर्षक कविता का यह बंद –

''आकाशीय
गंगा की
सिलमिली ओढ़े
तुम्हारे
तन का छंद
गतस्पर्श ।''[3]

---

1 कवियों का कवि शमशेर,पृ.94-95.

2 आधुनिक कविता यात्रा,पृ.133.

3 इतने पास अपने, कत्थई गुलाब, पृ.17.

इस बंद में आकाशगंगा और तन के छंद में जो सांकेतिक संबंध है, वह इसकी संगीतात्मकता से ध्वनित होता है। इसलिए हम मान सकते हैं कि शमशेर ने न केवल प्रचलित छंदों का प्रयोग किया वरन् उन्हें तोड़कर नई रीतियों की भी आग़ाज़ भी किया। अतः शमशेर की कविता के प्रवाहित बोल को इन वाक्यों की स्पष्ट मधुरता में सुना जा सकता है –

"अपनी भाषा तो भूल ही गया जैसे
चारों तरफ की भाषा ऐसी हो गई
जैसे पेड़ों पौधों की होती है
नदियों में लहरों की होती है ।"[1]

कलाओं- तस्वीर, इमारत, मूर्ति, नाच, गाना, आदि का सौंदर्य शमशेर की कविता की जमीन है और कलाकार शमशेर के लिए उसी जमीन का हिया है। इसलिए एक जिज्ञासु की खोज यह भी है कि वह विष्णुचन्द शर्मा जी के निम्न कथन को देखे – "जिज्ञासु पूछता नहीं है, खोजता है। धूप थपेड़े क्यों मारती है, पत्नी की मौत तक, यौवन के सपनों में जान कीट्स (1795-1821) की तरह शमशेर 'स्लिप एंड पोयट्री' बुना करते थे। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता – चुंबन की मीठी पुचकारियाँ जॉन कीट्स की कल्पना में है, शमशेर की एक आत्मिक पहचान। धूप थपेड़े मारती है थप्-थप्। यह शमशेर ने देखा है आप भी कभी केले के वन में 'धूप' को देख सकते हैं। जैसे रंगमंच पर धूप कभी नृत्य-गीत दिखा रही हो। धूप कैसे थपेड़े मारती है, यह जिज्ञासा केले के वन में घुसने वाले जिज्ञासु की निजी खोज है। खोजने पर वन में यह जिज्ञासा शान्त हो जाती है। जैसे शमशेर केले के हातों से, केले के खंबों पर, सक्रिय धूप को देखते हैं। शमशेर की कल्पना में उनके साथ उनके पाठक भी रहते हैं। जो उस ध्वनि और चित्र को उनकी तरह तल्लीन होकर सुनते हैं। 'खसर-खसर एक चिकनाहट हवा में मक्खन सा घोल रही है' इस चित्र में पाठक खोता जाता है। जैसे नींद सी महसूस कर रहा हो।"[2] सचमुच शमशेर की कविता की जमीन में कला रुपों का खज़ाना बिखरा पड़ा है। इसलिए कुछ और भी जाने शमशेर की कलाओं के बारे में।

---

1 प्रतिनिधि कविताएँ, तुमने मुझे, पृ.188.

2 काल से होड़ लेता शमशेर,पृ.94-95.

नाटकीयता की दृष्टि से शमशेर की दो कविताएँ दृष्टव्य हैं। 'उषा' कविता का पूरा-का-पूरा विधान नाटकीय गतिमयता लिए हुए है। क्षण-क्षण परिवर्तित सुबह के वेश को कवि गतिमय चित्रों के माध्यम से खोलता चलता है। नभ के बदलते रंग-दृश्यों के लिए कवि तरह-तरह के उपमान चुनता है। अन्तिम बंद तक पहुँचते-पहुँचते –

"और...
जादू टूटता है इस उषा का अब
सूर्योदय हो रहा है ।"[1]

जो आँख मिचौली 'उषा' खेल रही थी, धीरे-धीरे उदित होते सूर्य से उसका खेल समाप्त हो रहा है या उसका भ्रमित करने वाला जादू टूट रहा है। सूर्योदय होते ही उषा का नाटक समाप्त हो रहा है। इसी प्रकार 'अफ्रीका' कविता में कवि का निर्देशन देखिए –

"एक बराबर के चौकोर
दो पत्थर
सजाकर उसने रक्खे
सफेद के उपर काला
काला लड़का
वह खेल रहा था
मालिक आया
है! खेल रहा है ।"[2]

नाटक में काला लड़का खेल-खेल में दो बराबर के चौकोर पत्थर ऊपर-नीचे करता रहता है। कभी काले के उपर सफेद पत्थर तो कभी सफेद के ऊपर काला पत्थर। इस कविता की विस्तृत व्याख्या के लिए चलते हैं विष्णुचन्द्र शर्मा जी के पास – "रंगमंच पर एक काला लड़का सिर्फ मनोरंजन के मूड में है। उसे नहीं पता कि उसके पीछे मालिक भी खड़ा है / मंच पर मालिक आया / लड़का खेल में मगन है / पर सफेद मालिक के लिए यह निरन्तर जनवादी संघर्ष का दूषित पक्ष लगता है / वह चिढ़ रहा है : ऊपर काला पत्थर / नीचे सफेद पत्थर ! यह वास्तविकता अफ्रीका की है जिसे काला लड़का पसंद करता है / गोरा मालिक नापसंद

---

1 कुछ कविताएँ, उषा. पृ.15.

2 प्रतिनिधि कविताएँ, अफ्रीका, पृ.176.

करता है / नाटक में यहीं से तनाव शुरु होता है / तुलमुल संघर्ष, नहीं, सीधा टकराव / मालिक गुलाम काले को गाली देता है - सैंड़/सैंड़/ सैड़ । शमशेर का कवि नेपथ्य में है । सोचता है 'क्या यही दुःखद नाटक त्रासदीय सच्चाई नहीं? हाय! हाय! क्यों है अफ्रीका गोरों का गुलाम! भावुक शमशेर से भिन्न प्रकृति का है काला लड़का । वह अधिक ठोस जमीन पर है । वह चिढ़े हुए गोरे मालिक को खुश करने के लिए पत्थरों के खेल का क्रम बदल देता है । देखते हैं दोनों । काला लड़का कहता है : लो मालक / अब ठीक है? / सफेद उपर! वास्तव में वह चिढ़ाता है और अपने खेल पर हँसता है 'हा / हा / हा /अब ठीक है ।' शमशेर का कवि और काला लड़का इस मानवीय विड़ंबना में 'सहव्याप्ति का अनुभव करते हैं, 'काले के ही बल पर /टिका है सफेद' । यह पक्षधर राजनीति का सकारात्मक सूत्र है:काले के ही बल पर । शमशेर नेपथ्य में हैं । काला लड़का खेल-खेल में मालिक से छेड़खानी कर रहा है: 'अब लो /अब लो /अब दोनों एक /एक बराबर हैं/ बराबर /बराबर रखे हुए /अब ठीक है?' नेल्सन मंडेला अफ्रीका कविता में नहीं हैं, पर काला लड़का, उनकी ही प्रतिकृति है । मालिक गोरा, काले पत्थर को बराबर का दर्जा देने को तैयार नहीं है । वह काले पत्थर की बराबरी से क्षुब्ध है : ना ई ! इन्हें दूर करो । खेल में चलनेवाला नाटक सीधे लड़ाई में बदल जाता है । गुस्से से काला लड़का ठोकर /मारकर दूर कर देता है /यह सीधी काली सभ्यता की जीत का ऐलान है /गोरा उसे कोड़े मारता है जैसे ही कोड़ा उस /पर पड़ता है /वह उछल कर उसकी गर्दन दाँत से दबोच लेता है / बच्चे के खेल का नाटक अफ्रीका की रंगभेदी वास्तविकता में बदल जाता है । कोड़ा खानेवाली जाति अब दबोच रही है, हावी है सफेदशाही पर । गोरा छटपटाता है हाय! हाय ! हाय ! /छोड़ो छोड़ो/ शमशेर इस पक्षधर कविता में नाराज़ कवि हैं (हिन्दी के नहीं) ठोस अफ्रीका की काली सभ्यता के । वह काला लड़का नहीं छोड़ता है गोरे मालिक को । अब विजय है । यह बताने के लिए नेपथ्य में ढोल बजता है । शमशेर की शैली नाटक में लगातार बदलती है । सुधी पाठक उसके साथ कविता से गुज़रते हुए अपने चित्त को अकारण उत्कंठित पाता है । यह पाठक धीर और विवेकी दोनों है । अतः कविता से

गुज़रते हुए पाठक मस्तिष्क से प्रौढ़ होता चलता है। यह प्रौढ़ पाठक ही अनाविल बुद्धि का सजग पाठक है।"[1] इतने लम्बे विवेचन के बाद स्पष्ट है कि विवेकी पाठक व सजग रहेंगे।

इस प्रकार शमशेर की कविताओं में छंद, उर्दू बहर, मुक्त छन्द आदि का प्रयोग हुआ है। इसीलिए लय भी इनके अनुसार बदलती जाती है - गीत, पद्य, गद्य, रूबाई, कते, सॉनेट, मरसिया आदि विधाओं के अनुरुप। 'संध्या' कविता में विद्युन्माला छंद, 'प्रेम की पाती' में पंक्ति छंद, 'य शाम है' में पंचचामर छंद आदि का प्रयोग शमशेर ने किया है। ग़ज़ल, रुबाई, कते, शेर, मरसिया आदि में उर्दू बहर का सफल प्रयोग भी हुआ है। सममात्रिक एवं विषममात्रिक छंद की कोटि में कविताएँ विभाजित भी हो सकती हैं। शमशेर ने छंदों को तोड़कर छंदों की नई रीतियाँ निर्मित की हैं। 'रेड़ियो पर एक योरोपीय संगीत सुनकर', 'घनीभूत पीड़ा', 'आओ', 'धूप', 'राग' के अतिरिक्त और भी बहुत सी कविताएँ इस श्रेणी में रखी जा सकती हैं। इसीलिए शमशेर की काव्य-लय भी एक जैसी नहीं है। गति और यति के विन्यास की दृष्टि से सागर-तट, लौट आ ओ धार, उषा, बादलों के मौन गेरु-पंख, कत्थई गुलाब आदि की लय अलग, चेहरे की शामों में, धारीदार जाँघियाँ पीला, दो मोती कि चन्द्रमा होते आदि की लय अलग तरह की, जीवन की कमान, काल तुझसे होड है मेरी, चुका भी नहीं हूँ मैं, आदि की लय भिन्न है, हार-हार समझा मैं, मूँद लो आँखे, मृत्यु का प्रस्तर खण्ड आदि की लय अलग किस्म की है, टूटी हुई बिखरी हुई, नीला दरिया बरस रहा तथा प्रेम की पाती, चाँद से थोड़ी सी गप्पें आदि की लय अलग-अलग तरह की, वाम वाम वाम दिशा, य' शाम है, राजनीतिक करवटें,गजानन मुक्तिबोध एवं भारतभूषण अग्रवाल आदि की लय भिन्न-भिन्न किस्म की है और गीत का राग तो अपना है ही। एक ही कविता में लय की गति समान नहीं है बल्कि अनुभूति के अनुरुप बदलती है, इस बात को नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता। सूक्ष्म-लय का जैसा अद्भुत प्रयोग शमशेर ने किया है, हिन्दी कविता में संभवतः अन्यत्र मिलना मुश्किल है। लय की गति कभी धीमी तो कभी तीव्र, कभी बहुत ही सुस्त तो कभी बहुत ही विलंबित, कभी मन्थर तो कभी अलस तरीके से बहती रहती है। लयात्मकता व चित्रविधान शमशेर की कविताओं की विशेषता मानी जा सकती है।

---

1 काल से होड़ लेता शमशेर,पृ.71-72.

शमशेर की कविता में बिन्दु-रेखा-खड़ी पाई-कॉमा-प्रश्नचिन्ह-आश्चर्यबोधक चिन्ह-अन्तराल आदि संकेताक्षरों तथा कला-रुपों की ऐसी लीला है कि उन्हें अलग करके पढ़ा-सुना नहीं जा सकता है। ये शमशेर की कविता की जमीन है और कलाकार उसी जमीन सूँघता है, देखता, सुनता, छूता, झूमता है । रंगमंच में धूप का नृत्य-गान हो या काले लड़के की शरारतें, दर्शक-पाठक एकटक बदलते नाटकीय दृश्यों को देखता रहता है । क्षण-क्षण परिवर्तित उषा के वेश या नाटक को धीरे-धीरे उदित होता हुआ सूर्य जिस प्रकार समाप्त करता है, उसी प्रकार दर्शक-पाठक भी उषा के जादू भरे रंग-दृश्यों को देखता हुआ चलता है। कहाँ है कलाओं का ऐसा अद्भुत प्रयोग! अतः शमशेर की कविता के रूप-विन्यास के आश्चर्यलोक को देखकर कहना पड़ता है कि –

"*तुमने धरती का पद्य पढ़ा है?*
उसकी सहजता प्राण है ।" (राग)

उपसंहार

उपसंहार

कविता का सौन्दर्यशास्त्र किसी भी कवि का हो सकता है, यदि शमशेर की कविता का हो बात ही कुछ और है। जीवन में प्रेम के जितने संवेदन-चित्र शमशेर ने दिए हैं, वे सभी चित्ताकर्ष हैं। ये चित्र ठोस अनुभव पर आधारित रहे हैं। विरह-मिलन के प्रेम की पीड़ा के चित्र स्मृतिजन्य हों या लाइव टेलीकास्ट, यदि वो देश-काल के अनुसार सहज न हुए तो आभासीय प्रतीत होंगे। अर्थात सहजता मानव का गुण माना जा सकता है। शमशेर की कविता के प्रेमानुभव से जुड़े चित्र मोटे तौर से इन गुणों से सराबोर हैं। शमशेर के प्रेमाकुल गुण-चित्र या गीत मानव के वास्तव जीवन की ज़मीन से फूटे हैं। जिसमें 'शव सी वात' की सिरहन है, अकेली शाम जैसा अवसाद है, प्रेम की विचित्र अनुभूति है, मौन का हल्कापन है और सुनहरी यादों से भरा गृहस्थ जीवन भी है। शमशेर के प्रेमानुभव के रंग इतने स्पर्श-कोमल व विशष्ट हैं कि कला-रूपों के रंग भी फीके मालूम होते हैं और स्टैच्यू अथवा चित्रों की ऐसी नक्काशी कि नारी की 'सुतवां देह' का अनुभव होने लगे। शमशेर जैसे पोएट पर मौसकी भी अपना जादू बिखेर जाती है। प्रेम-संवेदन के ये गुण-चित्र शमशेर की कविता को भिन्न बनाते हैं।

शमशेर के यहाँ मानवीय प्रेम से सम्बंधित कुछ ऐसी स्थायी समस्याएं रही हैं, जिन्हें वे विभिन्न कला माध्यमों में हल करते से नज़र आते हैं। इंसानी दर्द की बेचैनी से करुणा का राग बनता है। गहरे आसमानी रंग में लिपटा कोई कवि हो या एक अबद से मानो कुछ सूंघता मुसन्निफ हो या फिर एक माई जो अपनी भी है। शमशेर की कविता में करुणा का ऐसा सागर कि विधाओं से टकराकर आँखों में उतर आया हो। कह सकते हैं आँसू छलकने की बेताबी के बावजूद आकाश का फूल बन गया हो। आकाश के सरगम में जो खनिज रंग हैं उनमें ये फूल हैं। अर्थात गुज़रे हुए व्यक्ति हैं। और शक्ति औ' मिलन का हास झलकाने वाले फूल(पूर्वज) भी कई हैं। कहा जा सकता है कि शमशेर का आईना इन फूलों(व्यक्तियों) से सजा हुआ है। सुन्दर की खोज में संलग्न शमशेर की ये विशेषताएं कही जा सकती हैं।

शमशेर के उन गीतों व शेर-ओ-शायरी की कम अहमियत नहीं है, जो हुंकार-टंकार के साथ मुखरित हुए हैं। अपनी सादगी के साथ शमशेर जीवन की कमान कसकर 'य' शाम

है' का बिखरा छंद बनाते हैं और लेकर सीधा नारा चलते हैं। शमशेर की जीवनानुभूति में सामयिक समस्याओं का चित्रण भी है। उनका व्यंग्यकार रूप वहाँ और अधिक सक्रिय हो जाता है, जहाँ गंगा-जमुनी तहज़ीब पर कोई मज़हबी या पंडा चोट करता है। शमशेर के जीवन की ये संवेदनाएं उतनी ही खरी और विशिष्ट हैं, जितनी कि भारत और विश्व-मैत्री की भावना से जुड़ी संवेदनाएँ। यह आदिम-अभिनव राग कालजयी रचनाओं की विशेष भारत भूमि से गाया गया है। हिंसा के युग में शान्ति का सन्देश फैलाने वाले कवि शमशेर घर-बाहर की ख़बरों से अंजान नहीं रहे हैं। ये विशेषतायें हर अदना से इंसान के लिए आवश्यक हैं।

कवि के खोजी अनुभवों का एक दिलचस्प किनारा वह भी है, जहाँ कवि शमशेर विभिन्न कला-रूपों से बातें करते-से नज़र आते हैं। शमशेर वर्णाक्षरों के विविध प्रयोग करते हैं, 'रेडियो पर एक योरोपीय संगीत सुनकर' रोमांटिक सपने बुनते हैं और किसी की पेंटिंग में आँख मीचे धूप की चुस्कियाँ भी पीये जा रहे हैं। इनके साथ ही शमशेर के कुछ ऐसे प्रयोग भी हैं जो उसांसी लिए हुए हैं। ये प्रयोग शमशेर की कविता की ज़मीन है और कलाकार उसी जमीन को सूंघता, छूता, देखता, सुनता, झूमता तथा बातें करता है। शमशेर के ऐसे अद्भुत प्रयोगों से नयी वृत्तियाँ बनती हैं और कवि दोआब का भावुक शहरी कलाकार। यह शमशेर का आंतरिक-आत्मालाप माना जा सकता है।

शमशेर ने अपने समकालीन कवियों या कलाकारों पर भी लिखा है। उनके रचना-कर्म को परखा भी है। और तब बनाई है अपनी कविता। शमशेर की इन कविताओं में कभी दूसरे कवि का व्यक्तित्व झाँक रहा है तो कभी उसके रचना-कर्म की विशेषताएं और कभी नैन-नक्श से भरा-पूरा चित्र। जन की अपनी परिभाषा गढ़ते हुए शमशेर अपने समकालीनों से संवाद बनाते हैं। उनकी सुरुचि पर बात करते हैं और अपनी सुरुचि को भी कविता में चित्रित करते हैं। कला या व्यक्ति प्रेम की ये विशेषताएं भी शमशेर को भिन्न शैली का कवि बनाती है। शमशेर की कविता का समग्र रूप इतना भव्य व भिन्न है कि उसे बिना रसमयता के ग्रहण ही नहीं किया जा सकता। कलाओं के बिखरे ख़ज़ानों से आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक ही है। शमशेर की कविता में प्रकृति के, मानव जीवन के तथा कलाकार जीवन के कलात्मक चित्र मिलते हैं। जिन्हें वर्गीकरण के द्वारा नहीं अपितु सजग दृष्टि से समझा जा सकता है। इन चित्रों में गतिशील बिम्बों की सृष्टि हुई है। एक के बाद एक हवा में 'सन्-सन् चलते ज्योति

के हर तीखे बान' को देख पाना इतना आसान नहीं है। यदि शमशेर के वैविध्यपूर्ण बिम्बों की कोटियाँ बनानी पड़ें तो उन्हें-चाक्षुष, गंध, ध्वनि, स्पर्श, मिश्रित, असंबद्ध, अनुरणात्मक आदि कोटियों में रखा जा सकता है। उनमें घरेलू, सामजिक, सांस्कृतिक तथा कलात्मक जीवन से सम्बंधित बिम्ब घुले-मिले हैं। कहीं-कहीं तो पूरी की पूरी कविता बिम्ब प्रवाह लिए हुए है। छोटे-बड़े-मझोले प्रकार के बिम्बों में टटके बिम्बों से कवि के जीवन की झलक दिखाई पड़ती है। शमशेर की जीवनी के बिना इन बिम्बों से वह दवाइयों के साथ, चाय की दली हुई पत्ती के साथ, यार-दोस्तों के साथ, कलाकार-पाठकों के साथ, कमरे में किसी की यादों के साथ, कैनवास में पेंटिग के साथ तथा रेडियो के साथ गुफ्तगू करते दिखाई-सुनाई पड़ सकते हैं। शमशेर के आईने का अनुमान इन बातों से लगाया जा सकता है।

रंगों का जैसा चमत्कृत प्रयोग शमशेर ने किया है, उतना संभवतः हिन्दी के किसी और कवि ने नहीं। रंगों की ऐसी आभा कि शमशेर की कविता का महल दूर से ही दिख जाए। रंग-संवेदन की दृष्टि से शमशेर अद्वितीय कवि-चित्रकार माने जा सकते हैं। शमशेर के रसमय चित्रों में कई रंगों की लीला है। हल्के, धूसर, चटख, आदि रंगों की श्रेणी इसलिए नहीं बनाई जा सकतीं, क्योंकि शमशेर की कविता में रंग बनने की विधि या हुनर भी है। इसके अतिरिक्त रंग के व्यंग्य-रूप बनाने की विधि या हुनर भी है। नीला, गुलाबी, पीला, चम्पई, कत्थई, लाल, केसरिया, साँवला, गोरा, काला, हरा तथा संवलाती ललाई आदि रंगों की छटा शमशेर के रसचित्रों में दिखाई देती है। इन रंगों के पीछे से मैले से झड़े बाल वाले शमशेर के जीवन के विविध रंग झांकते हैं। शमशेर के रस चित्रों में रंगों की कई संभावनाएँ निहित हैं। जिन्हें मैंने अपनी क्षमता भर समेटने का प्रयास किया है।

शमशेर की कविताओं के सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन से कुछ और रोचक तथ्य सामने आये हैं। मसलन शमशेर की कविताओं में पुरखों के बनाए छंद, मुक्त छंद, उर्दू बहर आदि का प्रयोग हुआ है। इसलिए लय भी पद्य, गीत, ग़ज़ल, गद्य, मर्सिया आदि के अनुसार बदलती जाती है। शमशेर ने छंदों का प्रयोग किया है और उर्दू बहर का सफल प्रयोग भी। उन्होंने छंदों की मरम्मत करके लय की कुछ नयी रीतियाँ निर्मित की हैं। इसलिए शमशेर की लय भी उनकी कला के अनुसार है। लय के सूक्ष्म प्रयोग की कुशलता तो है ही किन्तु लय, गति और यति के बीच धीमी, तीव्र, विलंबित, मंथर तथा अलस तरीके से बहती रहती है।

अगर रसचित्र की विविधता शमशेर की एक विशेषता है तो लय के प्रवाहित बोल दूसरी। शमशेर की कविता के रसमय सुर उनके काव्यपाठ जैसा माना जा सकता है।

कलाकार शमशेर शब्द की रसमयता का परिष्कार कर अपनी निजी शैली विकसित करते हैं, किन्तु उनकी कविता में बिंदु-रेखा-खड़ी पाई-कॉमा-प्रश्न व आश्चर्यबोधक चिन्ह-अंतराल आदि संकेताक्षरों तथा कला-रूपों की ऐसी महिमा है कि उन्हें अलग करके पढ़ा-सुना ही नहीं जा सकता। रंगमंच पर धूप का नृत्य-गान हो या काले लड़के की शरारतें, सजग दर्शक-पाठक की तरह बदलते नाटकीय दृश्यों को टकटकी लगाये निहारना पड़ता है। क्षण-क्षण परिवर्तित 'उषा' के धीरे-धीरे समाप्त होते नाटक या जादू को भी, बदलते रंग-दृश्यों के साथ आँखें खोलकर देखना पड़ता है। शमशेर के विशेषण प्रयोग की कुशलता को 'अपनों की खू-बू' माना जा सकता है। बावजूद इन बातों के शमशेर की कविता का रस के स्थायी भावों की दृष्टि से अध्ययन किया जा सकता है अथवा काव्य के अलंकारों की दृष्टि से भी अध्ययन किया जा सकता है।

इस प्रकार शमशेर की कविता के सौन्दर्यशास्त्र में मौन-मुखर आवाज़ है, देह और आत्म के विरह-मिलन की ग़ज़ल है, एकालाप में संलाप है और संलाप में एकालाप है, आंतरिक-आत्मालाप है, कल्पना और यथार्थ के रंग हैं, कलाकार और पाठकों के बीच संवाद है, बाहर-भीतर की चहलकदमी है, प्रकृति और मनुष्य के रसचित्रों का शाहकार है; और है कला-सौन्दर्य का अमूर्त-मूर्त रूप। जो कवि पूरब-पश्चिम को अपनी आत्मा का ताना-बाना मानता रहा हो वह क्लासिक कविताएँ भी लिखता है और सामयिक कविता भी। उसके लिए तो हिन्दी उतनी ही प्यारी है जितनी कि उर्दू। और ये बातें शमशेर को श्रेष्ठ बनाती हैं, ऐसा माना जा सकता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

आलोच्य ग्रन्थ

1. इतने पास अपने, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1980
2. उदिता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1980
3. कुछ और कविताएँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1961
4. कुछ और गद्य-रचनाएँ(संपादक- रंजना अरगड़े), राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1992
5. कुछ कविताएँ, जगत शंखधर प्रकाशन, वाराणसी, सं.-1959
6. चुका भी हूँ नहीं मैं, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1975
7. दूसरा सप्तक(संपादक- अज्ञेय), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वि. सं.-1970
8. बात बोलेगी, संभावना प्रकाशन, हापुड़, सं.-1981
9. मेरे बड़े भाई शमशेर जी(जीवनी), डॉ. तेजबहादुर चौधरी, साहित्यवाणी इलाहाबाद, सं.-1995
10. शमशेर : प्रतिनिधि कविताएँ, संपादक- नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1990

सहायक ग्रन्थ

1. अकविता और कला सन्दर्भ, डॉ. श्याम परमार, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, सं.-1988
2. अर्थात, रघुवीर सहाय, संपादक- हेमंत जोशी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2008
3. अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा, रमेश कुंतल मेघ, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2001
4. आज और आज से पहले, कुँवर नारायण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1999

5. आधुनिक कविता-यात्रा, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, सं.-2000
6. आधुनिक हिन्दी कविता(आत्मनिर्वासन और अकेलेपन का सन्दर्भ), प्रो. सुवास कुमार, भारतीय विद्या प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, सं.-1989
7. आलोचना की छवियाँ, ज्योतिष जोशी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1996
8. ऊहापोह, गिरिधर राठी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1998
9. कवि कह गया है, अशोक वाजपेयी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2000
10. कविता का आत्मपक्ष, एकांत श्रीवास्तव, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, सं.-2006
11. कवियों का कवि शमशेर, डॉ. रंजना अरगड़े, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1988
12. कविता का जीवित संसार, अजित कुमार, अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली, सं.-1972
13. कविता की जमीन और जमीन की कविता, नामवर सिंह, संपादक-आशीष त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं.- 2010
14. कविता की तीसरी आँख, प्रभाकर श्रोत्रिय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सं.-1980
15. कविता तीरे, डॉ. कमला प्रसाद वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1995
16. काल से होड़ लेता शमशेर, विष्णुचंद्र शर्मा, संवाद प्रकाशन, मेरठ, सं.-2006
17. चिंतामणि,आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं.-2002
18. चित्रकला और समाज, भाऊ समर्थ, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सं.-1988
19. छठवाँ दशक, विजयदेव नारायण साही, हिंदुस्तान एकेडेमी, इलाहबाद, सं.-1987
20. जनकवि, संपादक-विजयबहादुर सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1984
21. नयी कविता और अस्तित्ववाद, डॉ. रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1987

22. बिम्बों से झाँकता कवि: शमशेर, डॉ. वीरेंद्र सिंह, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, सं.-1983
23. भारतीय सौन्दर्य सिद्धांत की नयी परिभाषा, डॉ. एस. सुरेन्द्र बरलिंगे, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली
24. मलयज की डायरी (भाग-दो), संपादक- डॉ. नामवर सिंह, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2000
25. मार्क्सवादी साहित्य चिंतन: इतिहास तथा सिद्धांत, शिवकुमार मिश्र, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, सं.-1973
26. मुक्तिबोध रचनावली, भाग-5, संपादक- नेमिचन्द्र जैन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
27. यथार्थ यथास्थिति नहीं, रघुवीर सहाय, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1984
28. लालित्य तत्व, हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1994.
29. लेखक की रोटी, मंगलेश डबराल, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, सं. 1998
30. शताब्दी की कविता, नन्दकिशोर नवल, प्रकाशन संस्थान, सं.-2001
31. शब्द और मनुष्य, परमानंद श्रीवास्तव, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1998
32. शब्द जहाँ सक्रिय हैं, नन्द किशोर नवल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सं. 1986
33. शमशेर की कविता, नरेंद्र वशिष्ठ, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1980
34. संकल्प का सौन्दर्यशास्त्र, संपादक-मन्नु भण्डारी व अजित कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1997
35. संवाद, प्रभाकर श्रोत्रिय, राजपाल एंड सन्स, दिल्ली, सं.-1982
36. संवाद और एकालाप, मलयज, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1984
37. समकालीनता और साहित्य, राजेश जोशी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं-2010

38. समकालीन कविता का व्याकरण, परमानन्द श्रीवास्तव, शुभदा प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1980
39. समकालीन कविता में छंद, संपादक- सच्चिदानंद वात्स्यायन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सं.-1987
40. समकालीन हिन्दी आलोचना, संपादक- परमानन्द श्रीवास्तव, साहित्य अकादमी, दिल्ली, सं.-1998
41. साहित्य और सामाजिक सन्दर्भ, शिवकुमार मिश्र, कला प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1977
42. साहित्य के नए दायित्व,(संचार साधन और कला माध्यमों के सन्दर्भ में), रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
43. साहित्य विनोद, संपादक-अशोक वाजपेयी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सं.-1996
44. सुन्दर का स्वप्न, अपूर्वानंद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2001
45. सौन्दर्यशास्त्र : भारतीय चित्त और कविता, विजेन्द्र, अभिषेक प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2006
46. सौन्दर्य का तात्पर्य, प्रभाकर श्रोत्रिय, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1998
47. हजारीप्रसाद द्विवेदी संचयिता, संपादक- राधावल्लभ त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2001
48. हिन्दी साहित्य शास्त्र, संपादक-नन्दकिशोर नवल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.-2003

पत्रिकाएँ

1. आजकल(सितम्बर 1993)
2. आलोचना(जुलाई 1964/जुलाई-सितम्बर 2008/अप्रैल-जून 2010)
3. कथादेश(अप्रैल 2010)

4. कला दीर्घा(अंक : 12, अप्रैल 2006)
5. तद्भव(अंक : 22, 2010)
6. नया पथ(जनवरी-मार्च 2010)
7. परिकथा(मई-जून 2010)
8. पूर्वग्रह(अंक : 75, जुलाई-अगस्त 1986)
9. वसुधा(अंक : 86, जुलाई-सितम्बर 2010)
10. समकालीन जनमत(सितम्बर 2010)
11. समकालीन भारतीय साहित्य(अंक : 51, जनवरी-मार्च 1953)
12. हंस(अंक : 12, जुलाई 1993)

आलोचना कोष

1. आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, बच्चन सिंह, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2001
2. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ. अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, संस्करण- 2009

बेव साईट

1. http://www.hindikunj.com/2009/08/blog-spot-18.html#comment-form
2. http://www.srijangatha.com/?pagename=mulyankan1-Feb2k7
3. http://www.srijangatha.com/?pagename=pustkayan1-13May2
4. http://www.in.jagran.yahoo.com/News/features/general/8-14-6453384.html
5. http://www.jagdishwarchaturvedi.blogspot.com/2010/05/blog-post 10.html
6. http://www.vatsanurag.blogspot.com/2008/06/blog-post-15 html